सीमा-रेखा

कर्तारसिंह दुग्गल

निधि प्रकाशन

मूल्य
22.50 रुपये

प्रकाशक
निधि प्रकाशन
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट
दिल्ली-110006

मुद्रक
शान प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032
SIMA REKHA (SHORT STORIES)
by: Kartar Singh Duggal

बी० आर० नागर को

अनुक्रम

सीमा-रेखा

वह बाहर था। एक घंटी, दूसरी घंटी, तीसरी घटी। आइरीन ने अपने-आपको रोके रखा। पूरा जब्त। यह 'बदतमीजी' थी। स्वयं ही तो इसने उसे बुलाया था। साफ-साफ शब्दों में न सही, लेकिन मोहब्बत में किसीका इशारा ही काफी होता है। और अब वह इसके बंगले के बाहर खडा घंटी पर घंटी बजा रहा था। आइरीन घर मे अकेली थी। उसके पति को आज देर से आना था। नौकर-चाकर बाहर गए हुए थे। बच्चे पहाड़ पर थे।

आइरीन सोचती, घंटी का जवाब न पाकर वह लौट जाएगा। दीवार पर टंगी यीशु की तस्वीर के सामने वह हाथ जोड़ रही थी—आज की शाम मेरी रक्षा करो। आज की शाम मेरी पीठ पर हाथ रखो। आज की शाम मुझे क्षमा करो।

लेकिन नही, वह तो वैसे का वैसा बरामदे में खड़ा था। घंटी का जवाब न पाकर जैसे उसने इंतजार करने का फैसला कर लिया हो। वह बरामदे मे पडा हुआ अखबार पढ रहा था। दो मिनट, चार मिनट, दस मिनट, वह तो अखबार मे खो गया था। वह तो चाहे शाम-भर इन्तजार कर सकता था। बाहर कितनी गर्मी थी! बरामदे में पंखा भी नहीं था। आइरीन खिडकी के पर्दे के पीछे से एकटक उसे देख रही थी। वह, जिसकी याद को सीने से लगाए, वह रात-रात-भर करवटें बदलती रहती थी; वह, जिसको चार दिन देखे बिना इसे आसपास फीका-फीका लगने लगता था। बेटी से, बेटे से, अड़ोस-पड़ोस से बात करते हुए हमेशा उसका जिक्र आ जाता था। किसी न किसी तरह उसकी बात छिड़ जाती थी। जब वह टेलीफोन करता, उसके हाथ-पांव फूल जाते। यह डर कि अभी वह टेलीफोन बन्द कर देगा, आइरीन न स्वयं कोई काम की बात कर

पाती, न उसकी कोई बात इसके पल्ले पड़ती । प्रायः ऐसे होता था, वह टेलीफोन बन्द करता और आइरीन सोचने लगती कि उसने क्यों टेलीफोन किया था । इसे तो कुछ भी याद न रहता । सारी बात भूल जाती । कानों में एक मधुर झंकार सुनाई दे रही होती, और बस ।

खिडकी के पीछे पर्दे के साथ सटकर खडी, एकटक उसे देख रही आइरीन से आखिर रहा नहीं गया । पता नही कब इसके कदम आगे बढे, पता नही कब इसने चटखनी उतारी, पता नही कब इसने दरवाजा खोल दिया । और मुजीब इसके सामने खड़ा था । जैसे गजल का कोई शेर हो ।

"माफ करना मैं गुसलखाने में ···"आइरीन ने झूठ बोलने की कोशिश की, लेकिन मुजीब के सामने वह झूठ न बोल पाई और शब्द उसके गले में अटककर रह गए ।

गोल कमरे में घुसते ही, आइरीन ने खिड़कियां खोलीं, पर्दे हटाए । पंखा चल रहा था, लेकिन आइरीन के गालों से पसीना चू रहा था । वह लाल सुर्ख हो रही थी । दहकता-दहकता चेहरा । तीसरे पहर ही तो यह बाल सेट करवाकर हेयर ड्रेसर से लौटी थी । तभी मुजीब का टेलीफोन आया था । पता नहीं आइरीन ने उससे क्या कहा था । बाल सेट करवा-कर जब वह बाहर निकल रही थी, उसने हेयर ड्रेसर के आदम-कद आइने मे अपने-आपको देखा तो सहज ही उसे मुजीब की याद हो आई थी । पता नहीं क्यों ? शायद इसलिए कि मुजीब ने एक बार बालों के ऐसे स्टाइल का जिक्र किया था ।

'अभी तो तुमने इस तरह के बाल सेट करवाए हैं ।' आइरीन के दिल का चोर उसे बार-बार कचोट रहा था । वह पांव कहीं रखती, उसके पांव कहीं पडते । पसीना अब उसके अंग-अंग से चू रहा था । कुछ देर, और उसके कपडे तर हो गए ।

जिसको एक नजर देखने के लिए आइरीन तडप रही थी, वह इसके सामने गोल कमरे में बैठा था और अभी एक नजर उसको देखा तक नहीं था । अभी-अभी संवारे गए जिन बालों को दिखाने के लिए, उसे याद किया था, आइरीन समझ न पा रही थी, कैसे उन बालों को छिपा ले । और मुजीब एकटक उसकी ओर देख रहा था । उसके बालों के हुस्न

मे जैसे उसकी नजरें उलझकर रह गई हों। जैसे कोई मंत्रमुग्ध हो गया हो। जैसे वह एक नशे में सामने सोफे पर बैठा था। बाहें सोफे की पीठ पर फैलाकर। कुछ बैठा हुआ, कुछ लेटा हुआ। खामोश जैसे कोई साज हो। किसी कलाकार की एक फूक और जिसमे से नगमे फूट पडेंगे।

रेडियो सुनते हुए हमेशा आइरीन को मुजीब की याद आती। उसकी याद आती तो यह बटन घुमाकर नगमे को ऊचा कर देती, ऊचा और ऊचा। नगमा सारे कमरे मे, सारे वातावरण में गूजने लगता। अडोस-पड़ोस वाले सोचते, आइरीन किसी काम मे उलझे होने के कारण रेडियो को धीमा नही कर पा रही है। लेकिन यह तो भीतर की किसी आवाज को छिपा रही होती, किसी स्वर को किसी संगीत में घोल रही होती।

"आप क्या पिएगे ?" आइरीन को अचानक ध्यान आया कि मुजीब से उसने अभी तक चाय-पानी भी नही पूछा था।

"चाय पिऊंगा, लेकिन आपके मियां के आने पर।" मुजीब ने कहा और जेब मे से सिगरेट निकालकर सुलगा लिया।

सत्यानाश ! आइरीन के मियां को तो आज घर देरसे लौटना था। कोई दूर पार का रिश्तेदार मर गया था और वह शहर के उस पार उनके यहा गया था। वह तो चाहे सांझ ढले लौटे। कहां दरिया के पार वे लोग रहते थे और कहा उनकी कोठी थी। आइरीन सोचती कि उसकी चोरी पकडी गई है, उसके मुह पर कालिख पुत गई है। जिस शाम उसके मियां को बाहर जाना था, उसने बाल सेट करवाकर अपने महबूब को घर बुला लिया था। बच्चे तो पहले ही बाहर गए हुए थे। नौकरों को उसने इधर-उधर भेज दिया था।

और सामने सोफे पर मुजीब आधा बैठा, आधा लेटा सिगरेट पी रहा था। सारी शाम जैसे उसकी खाली हो। सिगरेट के धुएं के छल्ले बना रहा था। और आइरीन, बेचैन, गोल कमरे से गैलरी, गैलरी से बावर्ची-खाने के चक्कर काट रही थी। उसकी समझ में कुछ नही आ रहा था। चक्कर, चक्कर, मुजीब के सिगरेट के धुएं जैसे गोल चक्कर उसकी आखों के आगे उमड़ते आ रहे थे। आइरीन को लगता, जैसे यह एक ऊंची चोटी पर खड़ी हो, एक और कदम, और धड़ाम से औंधी जा गिरेगी। आइरीन

बच्चे को उसकी गोद में देते हुए आइरीन को लगा जैसे उसकी बाहें उसकी बाहों में जुड़कर रह गई हों। आइरीन का अंग-अंग झन्ना उठा। और वह एक उन्माद में सामने पलग पर औंधी जा गिरी। कितनी देर एक नशे में मदहोश पड़ी रही। रात हो गई। वैसी की वैसी अलसाई पड़ी आइरीन सो गई। न खाने के लिए उठी, न किसी और काम के लिए। एक सपने में सरशार, वह पड़ी थी कि दिन निकल आया। और फिर उसका घर वाला हाफता हुआ उसके कमरे में घुसा। उसके हाथ मे अखबार था। उनके दोस्त का हादसा हो गया था। कल शाम इनके घर से लौटते हुए, रास्ते में उसका स्कूटर एक फौजी ट्रक से जा टकराया था। और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई थी। ट्रक वाला फरार था।

वह दिन और आज का दिन, आइरीन ने किसी पराये मर्द की ओर आख उठाकर नही देखा। अब कुछ दिनो से मुजीव जैसे बेरोक उसकी जिन्दगी में घुसा आ रहा हो। बाड़ें फलांग रहा, सीमाएं लाघ रहा, चार-दीवारिया फाद रहा, उनके दाम्पत्य-प्रेम की लक्ष्मण-रेखा को पार करके, कब से इसके दिल के तारो को छेड़ रहा था। आठो पहर एक झनझनाहट-सी उसके कानों में गूंजती रहती। एक स्वाद-स्वाद, एक नशा-नशा, एक मादकता, एक मस्ती।

यूं ख्यालों में खोई हुई आइरीन को पता भी नही चला, कब उसकी बनाई हुई चाय ठंडी हो गई थी। जल्दी-जल्दी प्याला उठाकर वह गोल कमरे मे गई। अभी तक इन्तजार कर रहा, सिगरेट फूक रहा, मुजीव ने ठंडी चाय का प्याला पकड़ा, एक नजर आइरीन की ओर देखा और जैसे एक ही घूट मे सारा प्याला पी गया। चाय पीकर वह चल दिया। आइरीन ने उसे नहीं रोका। वह जा रहा था, जिसे बुलाकर उसने नौकरो को बाहर भेजा था। उसके पति को तो कहीं साझ ढले लौटना था।

खिडकी में खड़ी आइरीन उसे देख रही थी। मोटर उसकी आखों से ओझल हुई तो उसने चैन की सास ली। आइरीन के होंठो पर एक मुस-कान खेलने लगी। अकेली, खिड़की में खडी वह मुस्करा रही थी कि उसकी आंखो से छल-छल आंसू बहने लगे।

मेले की शौकीन

अपने चार वर्ष के बच्चे को उंगली थमाए, अपने-आपको अच्छी तरह से ढक-ढकाकर वह घर से निकल पडी। इधर सांझ हुई, उधर वह चल पडी। पिछले कुछ दिनों से, जब से इस शहर में नुमाइश लगी है, बस उसका यह नित्य का नियम बन गया है। कभी एक बच्चे को, कभी दूसरे बच्चे को उंगली पकड़ाती और चुपके से दालान में से निकल जाती। उसकी पडोसिनें उसके मुह की ओर देखती रह जाती। कितनी बुरी-बुरी शंकाएं उनके मन मे उठती, पर फिर वे सोचती कि शायद यह उनके मन का भ्रम है, जिन औरतो को कही झक मारनी होती है वे अपने बच्चों को गोदी मे थोड़े ही उठाए फिरती हैं।

इस शहर मे और कुछ होता ही नही। साल मे एक बार नुमाइश लगती है। नुमाइश के दिनो मे दुकानदार साल-भर की कमाई कर लेते हैं। नुमाइश के दिनों मे सरकार नई किस्म के बीजों, खेती के नये उपायो और रोग से उपचार का जितना प्रचार करना होता है कर लेती है। नुमाइश के दिनों मे स्कूल-कालेजों के लड़के-लडकिया जी भरकर सैर कर लेते हैं।

शाम को सारा शहर जैसे नुमाइश में टूट पड़ता हो, कधे से कंधा भिडता, पत्नियां पतियो से बिछुड जाती, पति पत्नियों को ढूढते फिरते। जगह-जगह पर लगे लाउडस्पीकरो से खोए हुए बच्चों के ऐलान होते रहते। कभी खोए हुए बच्चो का ऐलान उनके परेशान माता-पिता करवा रहे होते; कई बच्चे पूछताछ के दफ्तर में लाए जाते, जिनके वारिसो को इत्तला दी जाती कि वे उन्हें आकर संभाल लें।

पूछताछ के दफ्तर मे काम कर रही लड़कियां दीवानी-सी हुई रहती।

हर समय दफ्तर में दस-पन्द्रह बच्चे अवश्य होते। कोई रो रहा है, किसीकी नाक वह रही है, किसीको भूख लग रही है, किसीको बाथरूम जाना है। नुमाइश के प्रबन्धको ने वर्षों के अनुभव के बाद इस तरह के बच्चों के लिए कोका कोला और मीठी गोलियों का इन्तजाम कर रखा था। उनके मन-बहलाव के लिए पूछताछ के दफ्तर के अहाते में एक झूला भी डाल दिया गया था, और भी कई छोटे-मोटे खेलों का प्रबन्ध किया गया था। दफ्तर की एक न एक लडकी बच्चों की देखभाल के लिए हाजिर रहती। कभी एक, कभी दो लडकिया; शनिवार और रविवार को तीन-तीन, चार-चार लड़कियों की ड्यूटी लगानी पड़ती। जवान लड़किया हैरान होती कि कैसे कई मा-बाप अपने बच्चों को खो देते है। कई बार तो स्वयसेवक इतने प्यारे बच्चे लेकर आते कि उन्हें उनके मा-बाप को लौटाने का पूछ-ताछ की लड़कियो का मन न करता।

जैसे-जैसे वह नुमाइश के मैदान के पास पहुंचती जा रही थी, उसके सिर पर मे चुन्नी खिसकती जा रही थी। अब उसके फूल-चिड़ियों-से सजे बाल अनढके थे। उसका दुपट्टा सिर से उतर गया था। उंगली थामे हुए, साथ चल रहे बच्चे का हाथ उसने छोड़ दिया था, कभी बच्चा मा से दो कदम आगे-आगे होता और कभी चार कदम पीछे रह जाता। जब बच्चा ज्यादा पीछे रह जाता, वह खडी होकर उसकी बाट देख लेती, अपनी सुरमे से रगी आखों से घूर-घूरकर उसको कहती, "कलमुहे, जल्दी क्यो नही चलता ?"

नुमाइश के गेट पर उसकी झड़प टिकट बेचने वाले बाबू से हो गई।

बाबू कहता कि बच्चे की उम्र पाच साल है, बिना टिकट वह उसको अन्दर नहीं जाने देगा। बच्चे की मां बार-बार कस्में खाती कि बच्चा चार साल का है। बेशक उसका कद-बुत पांच साल के बच्चे जैसा है, पर उसकी उम्र चार साल से ज्यादा नही। काश, टिकट बाबू ने बच्चे के बाप को देखा होता। बला का जवान था। खडा होता तो उसकी पगड़ी का तुर्रा छत से जा लगता। एक के बाद एक, पाच बच्चे उसने इसको दिए, पांचों के पांचों बेटे, और आप चल बसा। मिल की ड्यूटी पर गया था कि मशीन के पट्टे के चक्कर मे आ गया। बडा मिस्तरी था, कोई ऐसा-वैसा

मजदूर नहीं था। मिल का मिस्तरी, जिसमें से चार टिकट बाबू निकल आएं।

और फिर टिकट बाबू ने उसका पीछा छोड़ दिया। अन्दर जाने के लिए पीछे कितनी भीड़ खड़ी थी।

नुमाइश में घुसी तो पहला काम उसने यह किया कि अपने बच्चे को खो जाने दिया। एक जगह जहां पर भीड़ ज्यादा थी, उसने बच्चे की उंगली छोड़ दी और आप एक ओर हो गई। बच्चा, कुछ देर इधर-उधर देखता रहा। फिर चिल्लाने लग गया। कुछ देर बाद, उसको इस तरह रोता देख, एक सन्तरी आया और बच्चे को उंगली से लगाकर पूछताछ के दफ्तर में ले गया। कुछ कदम पीछे चलती हुई वह देखती रही। पूछताछ के दफ्तर में उसका नाम दर्ज किया गया। फिर गोरी-चिट्टी एक लड़की ने उसे कोका कोला की एक बोतल ला दी। अब बच्चे ने रोना बन्द कर दिया था। कोका कोला पी चुका तो उसे मीठी गोलियां खाने को दी गईं। मीठी गोलियां खाकर बच्चा बाहर झूले पर आ बैठा और गोरी-चिट्टी लड़की उसे झूला झुलाने लग गई। इस तरह बच्चे को खेलते हुए देख, मां निश्चिन्त होकर नुमाइश देखने निकल गई।

कुछ देर तो उसने लाउडस्पीकर पर ऐलान सुना—"एक बच्चा, उम्र कोई पांच साल, जो अपना नाम बबलू बताता है, अपनी मां के साथ नुमाइश देखने आया है और मां से बिछुड़ गया है। बबलू की मां बबलू को पूछताछ के दफ्तर में आकर संभाल ले।"

'उम्र कोई पांच साल', उसने अपने मन में यह शब्द दोहराये और मुस्कराने लग गई—'मिस्तरी का बेटा है, मिस्तरी का।'

और वह बिसाती के स्टाल पर खड़ी गोटा-किनारी का दाम तय कर रही थी। कल भी कितनी देर वह इस दुकान पर खड़ी रही थी। नौजवान दुकानदार, जब कोई गाहक न होता तो उससे धीमे-धीमे मीठी-मीठी बातें करता रहता, "दुकान आपकी अपनी है, चाहे आप कुछ भी न लें।" और फिर जब बात आगे बढ़ने को होती कि हमेशा कोई गाहक आ जाता। गाहक को अपनी दुकान की ओर बढ़ते हुए देखकर नौजवान दुकानदार उसको वैसी की वैसी खड़ी छोड़ अपने गाहक से निबटने लग जाता।

में से टप-टप आँसू बहने लगे। उनके पड़ौस में थाना था और थानेदार हमेशा जब उसे अकेली देखता, यही कहता, "भाभी किसी दिन तुम्हें पकड़ना है। तुम कोई जुर्म क्यों नहीं करती? तुम्हें पकड़ने का मेरा बड़ा मन है।"

'जो मुझे पकड़ेगा उसे मेरे पांच बच्चों को भी खिलाना होगा।' मन ही मन वह बुडबुडाती और एक चंचल-सी हंसी हंसने लगती।

लेमन पीकर वह काफी आगे निकल गई कि उसे याद आया कि वह तो पैसे देना भूल गई थी। भीड़ भी कितनी थी! सोडे वाले की दुकान पर कई मुडू काम करते थे। बोतलें खोलते-खोलते उन्हें होश नहीं रहती थी। प्रायः लोगों से वे पहले पैसे लेते। फिर बोतल पकडाते। वह सोच रही थी कि वह लौटकर जाए और बोतल के पैसे दे आए। गरीब मुडू की पगार में से कट जाएंगे। लेकिन वह तो कितनी आगे निकल आई थी और फिर भीड़ भी तो कितनी थी! भीड के रेले में वह आगे धकेली जा रही थी। कुछ देर बाद वह लेमन की बोतल के बारे में भूल गई।

खिलौनों की दुकान पर पुलिस तीन-चार लडकों को हथकडी डाले खड़ी थी। खिलौने वाले ने शिकायत की थी कि कुछ लड़के उसका माल देखने के बहाने खिलौने एक-दूसरे को पकडाते थे और फिर सबसे आखिर में खडा उनका साथी खिलौने को थैले में समेट लेता था। सफेद कपडों में पुलिस ने उस शाम उस स्टाल की निगरानी की थी और लड़कों की टोली को पकड लिया था। उसने देखा और वह सिर से पांव तक कांप गई।

इतने में लाउडस्पीकर पर ऐलान हुआ, "एक बच्चा जो अपना नाम बब्लू बताता है। उम्र पांच साल…।"

वह सोचती कि वह अपने बच्चे को लेकर घर चली जाएगी। रास्ते में लेमन की दुकान पर मुडू को पैसे भी दे देगी। लेकिन सामने तो खुशबूदार तेल की दुकान थी। ये लोग ऐसा एक तेल बेचते थे जिससे कि सफेद बाल काले हो जाते हैं। उसके केश अभी सफेद तो नहीं हुए थे, लेकिन बीच-बीच में कई बाल भूरे हो रहे थे। लोगों को चाहे दिखाई नहीं देते थे लेकिन उसे तो मालूम था। और वह सोचती कि उसे अभी से कुछ उपाय करना चाहिए। यदि दाम तय हो जाए तो एक बोतल तो

वह जरूर आजमाएगी। लेकिन खुशबूदार तेल की इस दुकान पर दाम बंधे हुए थे। कोई उन्हें ऊपर-नीचे नहीं कर सकता था।

कई कर्मचारी उस दुकान पर काम करते थे। कल जिस नौजवान सेल्समैन से इसने वात चलाई वह कोई नटखट पंजाबी थी। कहने लगा, "आपको हमारे तेल की क्या जरूरत है। आपका जूड़ा तो पहले ही नही संभल रहा आपसे।"

लेकिन उसे मालूम नहीं था कि उसका मालिक अब नहीं रहा और कि जिन्दगी की ढेर-सी लम्बी रात उसे अभी काटनी है।

"कोई नमूने की शीशी हो तो मुझे द दो। मैं सारे शहर में तुम्हारे तेल का प्रचार करूंगी।" वह नौजवान से कह रही थी।

"बात तो ठीक है।" नटखट पंजाबी अपने साथी से कहने लगा, "इनको क्यों न एक शीशी मुफ्त दे दें। इन जैसे सुन्दर बालों वाली स्त्री जब तेल की सिफारिश करेगी तो लोगों को मानना ही पड़ेगा।" और वह पंजाबी लड़का कैसे भूखी-भूखी नजरो से उसके फूल-चिड़ियों वाले केशों की ओर देख रहा था।

उसने अपनी चुन्नी का पल्लू लेकर अपने सिर को ढांप लिया।

फिर उस स्टाल का मालिक उधर आ निकला और उसके मुलाजिम अपने-अपने काम में जुट गए। एक से एक फैशनेवल औरत इस स्टाल पर टूटी पड रही थी। हर एक को सफेद बालों से भय लगता था। किसी तरह वाल सारी उम्र काले रह सकें। उम्र चाहे दो-चार साल कम हो जाए लेकिन वाल काले रहें—काले, घने और खुशबूदार!

इस तरह के फैशनेबल गाहक जिस दुकान पर आएं, वहां उसकी दाल कहा गलेगी? और वह आगे को चल दी। नटखट पंजाबी की नजरें अभी तक उसपर पड़ी हुई थीं। हाथ से काम कर रहा था मगर आंखें जैसे उसके जूड़े में उलझकर रह गई हों।

तेल की दुकान से निकली तो उसका जी चाहा कि एक बार दूर से झांककर देख लें कि कहीं बबलू रो तो नहीं रहा। और वह तेज-तेज कदमों से पूछताछ के दफ्तर की ओर चल पड़ी। जैसे-जैसे शाम गहरी हो रही थी, नुमायश मे भीड़ बढ़ रही थी। उसे अचानक खयाल आया कि

कहीं कोई बदकार औरत उसके बच्चे को खिसकाकर न ले जाए। और उसके कदम और तेज हो गए। अगले क्षण वह पीपल के तने के पीछे खड़ी देख रही थी। सामने बबलू था। दो चोटियों वाली एक बच्ची की बाह में बाहें डाले खेल रहा था, जैसे उसका अपना ही आंगन हो। उसे तो रत्ती-भर भी परवाह नहीं थी।

और वह निश्चिन्त होकर सामने चूडियों की दुकानों की ओर निकल गई। हाय, आजकल कितनी प्यारी चूड़ियां बनने लगी हैं। जब उसके चूड़ियां पहनने के दिन थे तो इतनी सुन्दर चूडिया नहीं बना करती थी। अब तो वह पहली चूड़िया भी तोड चुकी थी। जब मिल से उसका शव लाए, उसने अपने कंगन उतार फेंके थे। पत्थर पर बांह रखकर एक-एक करके चूडिया तोडती गई थी और उसकी कलाइयां नंगी हो गईं।

अब वह-चूडियो का भाव तय कर रही थी। बेशक उसने चूड़ियां एक बार तोड़ डाली थी, लेकिन इसका मतलब यह थोड़े ही था कि अब सारी उम्र वह चूड़ियां पहनेगी नहीं, *सारी उम्र वह बिना सजे ही काट देगी*। बाल भी तो पहले वह सादा-से बनाती थी। लेकिन अब जहां से गुजर जाती, एक बार लोगों की नजर जरूर उसके जूड़े पर जाती, उसकी फूल-चिडियों की ओर पडती। चाहे कोई मर्द हो चाहे कोई औरत !

चूडियों वाला भाई, गालों में पान का बीड़ा दबाए, लाल-लाल आखें, उसे लगता जैसे उसकी कलाइयों से ज्यादा खेल रहा हो और चूड़ियों की ओर उसका कम ध्यान हो। "इतनी महंगी नहीं, इतनी महंगी नहीं।" लेकिन वह तो और भी महंगी-महंगी चूडिया इसे पहनाए जा रहा था। फिर इसकी पलकें खुली की खुली रह गईं। वह सोच रही थी कि इससे तो यह किसी चूडियों वाले से ब्याह कर ले। चूडियां तो पहनने के लिए जी भरकर मिलेंगी। और उसका मन कहता, अब भी कौन-सा समय बीत गया है। अब भी ' अब भी ''और वह सिर से लेकर पाव तक काप उठी।

उसकी कलाई चूडी वाले के हाथों में थर-थर कांप रही थी। उसका जी चाहा कि छल-छल आसू रो दे।

और वह आगे निकल गई। उसे अपने-आपसे डर लगने लगा था।

हर बार चूड़ी वाला, दुकान के पीछे, पर्दे की ओट में चूड़ियां निकालने के लिए जाता, उसकी नजर उसके पीछे-पीछे चली जाती थी। उसे अपने-आपसे डर लगने लगा। चूड़ियों वाला उसे आवाज देता रहा, लेकिन वह आगे निकल आई। छोटे-छोटे इसके बच्चे थे। वह सुनी-अनसुनी करके आगे निकल आई।

चूड़ियों से बाजार भरा हुआ था। बुरके वाली औरतों से लेकर, कटे हुए बालों वाली फैशनेबल औरतों तक, झुंड की झुंड, वे चूड़िया पहनवा रही थीं। लेकिन वह किसी और दुकान पर नहीं रुकी।

चूड़ियों के बाद चाट की दुकानें थीं। नुमायश वाले बड़े चालाक थे। पहले चूड़ियां, फिर चाट! और उसके आगे बागीचा था। दफ्तरों के बाबू चवन्नी की चूड़िया पहनवाकर अपनी घरवालियों को चार पैसे की चाट खिलाते और सामने बागीचों में जा बैठते। अंधेरा होने तक अलसाई-अलसाई नजरों से एक-दूसरे की ओर देखते रहते!

चाट का दोना उठाए वह बागीचे में आ बैठी। चारों ओर जोड़े बैठे हुए थे। और वह अकेली थी। अकेली चाट खा रही थी। कितनी मिर्चें चाट वाले ने डाली थीं।

और फिर चारों ओर बत्तियां जगमग-जगमग करने लगीं।

"एक बच्चा जो अपना नाम बबलू बताता है। उम्र पांच सात…"

…फिर ऐलान हो रहा था। और वह जैसे थक गई हो। घास के मैदान पर एक झाड़ी की ओट में वह सीधी लेट गई। झाड़ी के उस ओर नुमायश की बत्तियों की जगमगाहट नहीं पहुंच रही थी। रात घुप अंधेरी थी। क्षण-भर को सुस्ताने के लिए लेटी। पता नहीं कब उसकी आंख लग गई। और वह कितनी देर सोई पड़ी रही।

"अब हमें चलना चाहिए।" जब उसकी आंख खुली, झाड़ी की दूसरी ओर से आवाजें आ रही थीं।

"अभी तो रात कुआरी है।"

"अब हमें चलना चाहिए। नुमायश बन्द हो गई है।"

"अभी तो रात बहुत-सी बाकी है।"

"अब हमें चलना चाहिए। बेबी इन्तजार कर रही होगी। कल भी

'यात्रा

'दरबार साहब, अमृतसर जाओ, तुम्हारी सब मनोकामनाएं पूरी हो जाएंगी !"

"अमृतसर हरि मन्दिर में स्नान करके, प्रसाद चढ़ाना और फिर माथा टेकना। वहां से कोई खाली नहीं लौटता।"

"रामदास सरोवर न्हाते, सब उतरे पाप कमाते।"

जो सहेली भी बोलती, यही कहती, "जस्सां ! तुम अगली मावस को दरबार साहब, माथा टेकने जाओ, तुम्हारी हर मुराद पूरी होगी। और जस्सा सोचती, वह यह भी करके देख लेगी। कई व्रत-उपवास उसने किए थे। कई मन्नतें मानी थीं। कई टोने किए थे। कई दरगाहों पर वह गई थी। उसकी मनोकामना कहीं पूरी नहीं हुई थी। वैसी की वैसी वह तड़पती रहती। उसे चारों ओर अंधेरा नजर आता। इस उम्र में कोई मायके जाता हुआ कहीं शोभा देता है ? उसे नौ बरस ब्याहे को हो गए थे। अब वह मायके कैसे जाए ?

और जब उसका घरवाला बोलता, यही ताना देता, "तुझे कौन-सा किसीने पूछा है। घरवालों ने ब्याह करके पीछा छुड़ा लिया।"

और जस्सां सोचती—छोटी-सी बच्ची को लेकर अब वह कहां जाए ?

सबसे बुरा उसे तब लगता जब आधी रात को दारू पीकर वह घर लौटता और बाहर गली में से आवाज देता, "जस्सो ! दरवाजा खोल। इधर सांझ नहीं ढलती कि नींद आ जाती है इस नवाबजादी को !"

हर रोज उसका यही दस्तूर था। और फिर सामने से अपनी घरवाली

का सूजा हुआ मुह देखकर वह उसे पीटने लगता। कभी लात, कभी थप्पड़; और गालियां कितनी बुरी बकता था। हर रोज उसके मां-बाप, उसके भाइयों के प्रति कुवचन बोलता।

और सब कुछ वह सुन सकती थी, लेकिन जब उसे वह 'जस्सो' कहकर पुकारता, जस्सा को चारो-कपड़े आग लग जाती। 'जस्सो' तो उसके मायके में उनकी मेहतरानी का नाम था। 'जस्सो' तो वहां के मीरासियों की बेटी का नाम था। 'जस्सो' कहकर तो उसे उसकी सौतेली मां बुलाया करती थी। जब मुह खोलती, 'अरे मुई जस्सो' कहकर उसे पुकारती। और जस्सा को अपनी सौतेली मा याद आ जाती। सौतेली मा याद आती तो उसे अपने आसपास से बदबू आने लगती।

जस्सा के कान भी तरस गए थे कि कभी उसका घरवाला उसे 'जस्सो' कहकर पुकारे। जैसे पहले कभी वह उसे पुकारा करता था। अब तो कई महीने बीत गए थे। उसके मर्द ने इसे कभी उस तरह प्यार-भरी नजरो से नहीं देखा था। कैसे पलकों में अपना सम्पूर्ण हृदय भरकर, वह उसे जस्सा पुकारा करता था। और फिर उसे अपनी बांहों में भरकर, भींच-भींच डालता। अब वे दिन लद गए थे—हमेशा-हमेशा के लिए।

आजकल तो जस्सा का अग-अंग सूजा रहता, टीसें उठती रहती। हर रोज, हर दूसरे रोज उसकी पिटाई होती थी। अगली सुबह वह भगवान का शुक्र करती जब वह साइकिल लेकर घर से निकलता।

जस्सा सोचती, शायद वह इसलिए खफा रहता था क्योंकि उसने बेटी जनी थी। इसमें उसका क्या कसूर था! जिसने बेटी दी थी, वह बेटा भी दे सकता था। और अगर इसी तरह से वह इसे पीटता रहा तो फिर वह बेटे का मुह देखने के लिए तरसता ही रहेगा। इस तरह पिट-पिटकर कोई बेटे की मा बन सकती है कभी?

जस्सा सोचती, शायद इसलिए कि अब उसकी जवानी ढल गई थी। नौ बरस उन्हें ब्याहे हो गए थे। जवानी को तो ढलना ही था। लेकिन जस्सा में अब भी एक जादू था जो राह-चलते को बांधकर बिठा लेता, उसकी सब सहेलियां यह कहती थीं। लेकिन जस्सा सोचती, अगर यूं ही वह पिटती रही तो उसमें क्या बचेगा? जीवन हाथ से फिसलता जा

रहा था।

और फिर जस्सा को पता चला, उसका मर्द बुरी संगति में पड़ गया था। वे लोग दफ्तर में रिश्वत लेते थे, और हर शाम उनकी चंडाल-चौकड़ी हराम के को उडा देती थी। हर रोज दारू पीते थे। हर रोज गाना सुनने के लिए किसी न किसी कोठे पर पहुंचते थे। जो लोग इतना करते वे और जो कुछ भी करे, सो थोड़ा। और जस्सा हाथ मलती, यू तो वह इसके आगन में कोई बीमारी ले आएगा। इस तरह की बीमारियों में आदमी भुनसकर रह जाता है। पीढ़ी के बाद पीढी रोग चलता रहता है। जस्सा स्वयं तो सहन कर सकती थी, जो इसकी किस्मत मे था; लेकिन अपनी बच्ची को वह इस नरक में झोंकने के लिए बिल्कुल तैयार नही थी।

और फिर पखवाड़े, अमावस्या को वह अमृतसर के लिए चल पड़ी। पड़ोसिन को घर की चाभी पकड़ाकर वह गाड़ी मे बैठ गई। कई दिनों से वह अपने घरवाले को चलने के लिए कह रही थी, पर उसने कभी इसकी बात पर ध्यान नही दिया था। एक कान से सुनता, दूसरे से निकाल देता।

चलने से पहले, उसकी सहेलियों मे से किसीने 'कड़ा' लाने के लिए फरमाइश की, किसीने हाथी दात का कंघा लाने की ताकीद की, किसीने अपने बच्चे के लिए झुनझुना मंगवाया तो किसीने कुछ और।

गाडी में बैठी जस्सा, अपनी एक-एक सहेली की फरमाइश याद करती रही। छोटी-छोटी बातें अपनी गोद की बच्ची के साथ कर रही थी। गाड़ी अपनी चाल चली जा रही थी।

और जस्सा सोचती, इतने सारे लोग अमृतसर जाते है—अमावस्या पर स्नान के लिए। गाड़ी कैसे भरी हुई थी। मर्द, औरतें और बच्चे। कान पड़ी आवाज सुनाई नही देती थी। आदमी पर आदमी चढा हुआ था।

और जस्सा सोचती, 'क्या इन सब औरतों के मर्द बिगड़े हुए है ?' इन सब मर्दों की औरतें शायद बदचलन हैं। सब जाकर पवित्र सरोवर मे स्नान करेंगे। अपने पाप धोएगे। सब लोग प्रसाद चढ़ाएगे और फिर गुरु राम-

दास के स्थान पर शीश झुकाएंगे, और अपने मन की मुराद पूरी करेंगे।

उसकी मुराद भी पूरी होगी जो दारू पीकर घर लौटता था, और हर रोज, हर दूसरे रोज अपनी पत्नी को पीटता था। थप्पड़, घूसे, और लातें। और गंदी गालियां। तोबा-तोबा! कैसे-कैसे दुर्वचन उसके मुंह से निकलते थे। और जस्सा अपने कानों में उंगलियां दे लेती।

अचानक उसकी आंख खुली, और जस्सां ने देखा कि उसकी बच्ची हुमक-हुमककर सामने की सीट पर किसी पराये मर्द की ओर जाने के लिए बेकरार हो रही थी। इसने भी देखा, उसने भी देखा। और फिर पता नहीं क्या हुआ, बिना एक बोल मुंह से बोले, इसने अपनी बच्ची उसकी बांहों में थमा दी।

और मुई 'गुड्डी' भी जैसे जन्म-जन्म से उसे जानती हो। उसकी छाती से चिपककर किलकारियां भरने लगी थी। ऊंचा-लंबा जवान। बिच्छू के डंक जैसी मुड़ी हुई मूंछें। एक स्निग्धता-सी उसकी दृष्टि में। खिला-खिला-सा, पहचाना-पहचाना-सा चेहरा। और फिर वे बातें करने लगे। वह भी तो अमृतसर ही जा रहा था। दरबार साहब! उसके मन में भी कोई मुराद थी।

जस्सा सोचती, हर चेहरे पर कोई न कोई चाह लिखी हुई थी। हर मन में कोई न कोई मुराद पल रही थी। हर आंख में कोई न कोई सपना झलक रहा था।

"आप भी…?" उसने बात शुरू की।

"हां, अमृतसर जा रही हूं।" जस्सा ने बात आगे चलाई।

"मैं भी मावस के स्नान के लिए जा रहा हूं। हमारे कम्बख्त पडोसियों ने…।" और फिर वह चुप हो गया।

और जस्सा ने सोचा, वह भी दुखी था। उसके साथ भी कोई अन्याय हुआ था।

और फिर कितनी ही देर, वे खामोश, कभी-कभी एक-दूसरे को देख लेते। मन-चितभाता व्यक्ति था। कैसे गुड्डी को गोद में उठाए, दुलरा रहा था। और फिर जस्सा को लगा, जैसे उसका जी चाह रहा हो कि वह कोई और बात करे। लेकिन वह तो बच्ची के साथ खेल रहा था। खिड़की

से बाहर, कभी कुछ, कभी कुछ उसे दिखा रहा था।

इस बार जब उनकी नजरें मिली, तो जस्सां ने जैसे उसे निमन्त्रित किया हो। कोई बात वह करे। गाडी एक-सांस चलती जा रही थी—छक-छक, छक-छक, छक-छक''ग्रौर उसका मन ऊबने लगा था। घर में तो वह पास-पड़ोस से सारा दिन बातें करती रहती थी, दीवारों-छतो से बातें करती रहती थी। गली मे ग्राते-जाते लोगो से बातें करती रहती थी।

इतने में गाड़ी ग्रगले स्टेशन पर जा पहुंची। एक शोरो-गुल मच गया। भीड़ का रेले का रेला डिब्बे में घुस ग्राया। उतरनेवाले उतरने के लिए परेशान थे। जस्सा को पता भी नहीं चला ग्रौर ग्रजनबी उसकी बेटी को लेकर प्लेटफार्म पर कहीं निकल गया। एकदम जब उसे ध्यान ग्राया, जस्सा की ऊपर की सास ऊपर ग्रौर नीचे की सास नीचे रह गई। नहीं, वह तो सामने रेडीवाले के पास खड़ा बच्ची को मिठाई लेकर दे रहा था। इतने में जस्सां उठकर सामने खिड़की के पास उसकी सीट पर बैठ गई। ग्रौर फिर ग्रजनबी गुड्डी को मिठाई खिलाते हुए, खिड़की के पास ग्रा खड़ा हुग्रा।

"इनके पिताजी नही ग्राए ?" ग्रजनबी ने बात छेड़ी।

"उसे कहा फुरसत ? कहने लगा—जस्सां ! तू मेरे मुंह की ग्रोर देखती रही तो फिर तुम्हारा स्नान हो चुका !" जस्सा ने झूठ बोला।

"घर का व्यापार है या जमीदारी ?"

"नौकर है बडे दफ्तर मे। बड़ा बाबू है। कह रहा था—जस्सां! ग्रगले महीने मे वड़े बाबू से भी ऊपर हो जाऊंगा।" जस्सा ने फिर झूठ बोला। ग्रजनबी के साथ झूठ बोलना जैसे उसे ग्रच्छा लग रहा हो।

ग्रौर फिर वे एक-दूसरे की ग्रोर देखने लगे। पराया मर्द खिड़की के पास ग्राकर यों खड़ा हो गया था, जैसे घर से वे इकट्ठे निकले हों। गुड्डी, मिठाई वाला हाथ बढ़ाकर ग्रपनी मा के मुह में मिठाई का टुकडा दे रही थी। ग्रौर जस्सा को लगा, जैसे ग्रजनबी का कुरता उसके दुपट्टे को छू रहा हो। ग्रौर उसके शरीर में एक कंपकंपी-सी लहरा गई।

इतने मे गाड़ी ने सीटी बजाई ग्रौर पराया मर्द लपककर भीतर ग्रा गया। जस्सा फिर ग्रपनी सीट पर जा बैठी। ग्रजनबी गुड्डी को गोद मे

लिए, खिड़की वाली सीट पर बैठ गया। ठीक उसी जगह जहा अभी-अभी जस्सा बैठी हुई थी।

और फिर गुड्डी ने जैसे खेल बना लिया हो। कभी मां के पास आती, कभी अजनबी की गोद में। फिर मां के पास, फिर अजनबी के पास।

भला आदमी था, बच्चो से कैसे लाड़ कर रहा था। स्वभाव का कितना अच्छा था। अपने बच्चो का कितना प्यारा बाप होगा। कोई दोष उसमे नजर नही आता था। पता नही ब्याहा हुआ था या कुंवारा! जस्सा की समझ मे नही आ रहा था कि कैसे वह उससे यह बात पूछे। फिर वह सोचती, आखिर इसकी जरूरत भी क्या है?

"कितनी बडी हो गई है गुड्डी!" अजनबी ने फिर बात छेडी।

"डेढ बरस की होने लगी है!"

"लगती तो इससे कहीं बडी है।"

"बातें चाहे जितनी इससे करवा लो।"

"इसका भाई···?" अजनबी की आंखों में एक चचलता थी।

जस्सा ने कोई जवाब नही दिया।

"वह भी आ जाएगा। अभी कौन-सा वक्त बीत गया है!" फिर अजनबी आप ही आप बोला।

जस्सा जैसे विचारो मे डूब गई हो। उसे लगता जैसे उसकी आखो मे काली बदलिया उमड़ती हुई आ रही हों।

और फिर वह एकदम सभल गई। यह वह क्या तमाशा करने जा रही थी गाड़ी में?

गुड्डी उसकी गोद मे पडे-पडे पहले ऊघती रही, फिर सो गई। अजनबी किस तरह प्यार-भरी नजरों से उसकी ओर देख रहा था।

"जैसे चम्पा की कली हो।" उसने बच्ची की ओर देखकर कहा।

जस्सा ने कोई जवाब नही दिया।

"हू-ब-हू आपकी शक्ल है।" कुछ देर बाद वह बोला और अथाह प्यार अपनी आखों मे भरकर उसने जस्सा की ओर देखा।

चलती गाड़ी; आसपास की सवारियो मे कोई बैठा-बैठा सो गया था, कोई सोने की तैयारी में था। कोई एक-दूसरे से हंसी-मजाक कर रहे

थे, कोई यू वहमं में उलझे हुए थे जैसे दुनिया-भर की समस्याओं का बोझ उनके कंधों पर आ पड़ा हो।

"बच्ची सो गई है ! आप इसे मुझे पकड़ा दें।" कुछ देर के बाद जब खामोशी इसे भारी-भारी लगने लगी, जस्सा ने कहा।

"कभी फूल भी भारी हुए हैं ? यह तो जैसे गुलाब की कोमल कली हो।" अजनबी ने बच्ची से ज्यादा, बच्ची की मां की आंखों में आंखें डालकर कहा।

और जस्सा जैसे सिर से पाव तक सिहर गई। और उसने अपने दुपट्टे को और कस लिया। ठंड भी तो बढ़ रही थी। दोपहर गुजरी और एकदम जैसे परछाइया ढल गई हो। साझ हो गई थी। गाडी पीछे से भी लेट आई थी, और, और भी लेट हो रही थी।

"गाड़ी तो चीटियों की चाल चल रही है।" जस्सा ने चिन्तित होकर कहा।

"इस हिसाब से तो कहीं रात को अमृतसर पहुचेगी।"

"मैं तो सोचती थी, स्नान करके, रात को पटियाला लौट जाती।"

"काहे को ? गुरु रामदास की सराय में ठहरने का बड़ा अच्छा प्रबध है। कह-सुनकर, पूरा कमरा मिल जाता है।" जस्सा ने सुना और उसके शरीर में से एक कपकंपी-सी तैरती हुई निकल गई। और वह खामोश हो गई। उसकी आखें मुद गईं। 'धन्य गुरु रामदास ! धन्य गुरु रामदास !" जैसे इसका रोम-रोम पुकार रहा था और यू उसकी आख लग गई।

तब उसकी आख खुली जब गाडी अमृतसर के स्टेशन पर पहुच गई। इतना शोरो-गुल मचा हुआ था, जस्सा उठ खडी हुई। बच्ची अभी तक अजनबी के कधे पर थी। वैसी की वैसी सो रही थी। रात भी तो हो गई थी। और फिर वे गाड़ी से उतरकर बाहर रिक्शा में आ बैठे।

जस्सा की समझ में कुछ नही आ रहा था। जैसे किसीपर किसीने टोना किया हो। खामोश-सी रिक्शा मे वह बैठी थी कि रिक्शा दरबार साहब की ओर चल दिया। पाच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट और रिक्शावाला घंटी बजाता, आवाजें देता, हरि मन्दिर साहब पहुंच गया। ठीक दर्शनी ड्योढ़ी के सामने। बेअन्त संगत अन्दर जा रही थी, दर्शन

करके अन्दर से बाहर आ रही थी। कितनी भीड़ थी! कंधे से कंधा छिल रहा था।

"जस्सी! तुम जरा गुड्डी को लेना, मैं रिक्शा वाले का भाड़ा चुका दू।" अजनबी ने बच्ची को उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

"जस्सी!!" जैसे एक धमाका हुआ हो। अजनबी ने वैसे ही उसे बुलाया था जैसे कभी उसका मर्द उसे पुकारा करता था। अंधेरी रात मे!

उसी तरह की तो वह अंधेरी रात थी।

और फिर एकदम जस्सा जैसे कांप गई हो। सामने झम-झम करता सुनहला हरि मन्दिर था। सामने झिल-मिल कर रहा पवित्र सरोवर था, जिसका एक स्पर्श और जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जाते थे। और दर्शनी ड्योढ़ी मे लगे हुए लाउड स्पीकर में से कीर्तन की ध्वनि सुनाई दे रही थी—"जिस पापी को मिले न ढोई, शरण आवे ता निर्मल होई?"[1]

और जस्सा अपनी बच्ची को गोद मे लिए, भीड़ में दरबार साहब की ओर निकल गई। अजनबी रिक्शा वाले का भाड़ा ही चुका रहा था।

---

1. जिस पापी को कहीं सहारा न मिलता हो, मगर वह यहां शरण मे आ जाए तो वह पापरहित-निर्मल हो जाता है।

एक शराफत का सदका

जितने मुंह उतनी बातें।

जब से वह इस दफ्तर में आई थी, किरण की कहानियां चल पड़ी थीं। कभी कोई शोशा, कभी कोई। किसीकी सगाई टूट गई क्यों कि उसके ससुरालवालों को किसीने जा बताया कि वह किरण नाम की लड़की के साथ, हर चौथे रोज सिनेमा देखने चल देता है। किसीकी पत्नी उसे छोड़कर मायके चल दी क्योंकि उसने किरण के साथ उठना-बैठना शुरू कर दिया था। उसके एक साथी कर्मचारी ने सोने की गोलियां खाकर आत्महत्या करने की कोशिश की, मुश्किल से उसकी जान बची थी; कारण, किरण से उसकी कोई गलतफहमी हो गई थी। एक अफसर की तबदीली कर दी गई क्योंकि वह किरण पर लट्टू था। एक अफसर का ओहदा गिरा दिया गया; उसके साथियों ने देखा, किरण उसकी मेज पर बैठी उसे कोई फाइल दिखा रही थी।

अगर कोई अभी तक नहीं डोला था तो वह किरण का अपना अफसर था। और सब एक-एक करके ढेर हो गए थे। कुछ फंस गए थे, कुछ फंसने वाले थे। बस, एक उसका तुरन्त-ऊपर का अफसर था, जो अभी तक अचल था, जैसे बर्फ की शिला हो। कंवल मोहन चट्टान की तरह था।

और किरण थी, जैसे उसने जिद पकड़ ली हो। जीवन में उसने कभी हार नहीं मानी थी। एक हसीन औरत की जिद। सुन्दर भी तो कितनी थी! हसीन औरत जहां चाहे पहुंच सकती है, जो चाहे पा सकती है। कोई सोच नहीं सकता था कि यह नौकरी उसे मिल सकेगी, लेकिन किरण ने जब अपना मन बना लिया तो फिर नौकरी उसके कदमों में थी। एक

सिफारिश, दूसरी सिफारिश, तीसरी सिफारिश, और महकमे वालों के लिए इनकार करना मुश्किल हो गया। उसके यहां खास तौर पर किसीको भेजकर उसे बुलवाया गया। झूठ-सच इंटरव्यू किया गया। और फिर उसे सीधी राजपत्रित नौकरी पेश कर दी गई।

बड़ा शोर मचा। लेकिन कौन सरकार के साथ माथा टकराए? फिर किरण इतनी मिलनसार, इतने अच्छे स्वभाव की थी, एक बार उससे मिलकर किसीके लिए उसके विरुद्ध बोलना कठिन हो जाता। जहां बैठती खुशियां लुटाती रहती, जहां से गुजरती, मुस्कानें बिखेरती रहती।

और फिर काम में भी निपुण। जो भी जिम्मेदारी उसे सौंपी जाती उसे किरण पूरी मुस्तैदी के साथ निभाती। कभी किसीको शिकायत का अवसर न देती। जैसी उजली-उजली वह रहती थी, वैसा ही साफ-सुथरा उसका काम होता था। समय की पाबन्द। कभी देर से दफ्तर न आती। कभी वक्त से पहले खिसकने की कोशिश न करती, जैसी दूसरी लड़कियां किया करती थीं।

और न ही दूसरी औरतों की तरह वह बेहूदा सजकर काम कर आती। लिपस्टिक के लेप और मुट्ठी-मुट्ठी-भर काजल। गहरे गिरेबान की चोलियां, ऊंचे कुरते; अंगों की नुमायश ज्यादा, उनका ढकना कम।

किरण के आकार को घटनेवाले सैंडलों की जरूरत नहीं थी, जैसे कोई चबूतरे पर पंजों के बल खड़ा हो। किरण के रंग-रूप को किसी पाउडर की अपेक्षा नहीं थी, कोई लाली दरकार नहीं थी। उसके रेशम के लच्छों जैसे सुनहरी बाल, जैसा भी जूड़ा बनाती, हर किसीको मोह लेती। बालों में फूल जरूर लगाती थी। कभी अनखिली कली, कभी अधखिली, कभी खिली हुई कली।

सलवार-कमीज, साड़ी, स्लैक, जो लिबास पहनती, वही उसपर खिलता। जैसे कोई तसवीर हो। जहां बैठती, वही जगह अच्छी-अच्छी लगने लगती।

सबसे हसीन किरण की आंखें थीं; जैसे मुसकरा रही हों। एक सोया-सोया-सा खुमार; जैसे-जैसे वह पलकें खोलती कोई खामोश नगमे, आस-पास मचलने लगते।

लेकिन कंवल मोहन पर इसका कोई जादू नहीं चला। कभी उसने इसके साथ कोई फालतू बात नहीं की। कई-कई दिन बीत जाते और उनकी मुलाकात न होती। किरण फाइल भेजती, इससे पहले कि उसे याद दिलाने की जरूरत पड़ती, फैसला उसकी मेज पर आ जाता। आते-जाते बरामदे या गैलरी में कभी भेंट हो जाती। कंवल मोहन किरण के हाथ जोड़ने से पहले अपने हाथ जोड़ देता और आगे निकल जाता। जब कभी किरण को उसके कमरे में जाने की जरूरत पड़ी, मतलब की बात करके, कंवल मोहन अपने काम में लग जाता। कभी टेलीफोन कर रहा, कभी टेलीफोन सुन रहा, कभी चिट्ठियां लिखवाकर, कभी मुलाकातियों को निपटा रहा; किरण ने एक बार उसे चाय पर बुलाया, वह फारिग नहीं था। किरण ने एक बार हफ्ते की छुट्टी मांगी। दफ्तर में ढेरों काम पड़ा था, कंवल मोहन ने एक बार उसे बुलाकर नहीं कहा कि वह छुट्टी फिर कभी ले ले, या छुट्टी कम कर दे। इधर से अर्जी गई, उधर उसने मंजूर कर दी। किरण हक्की-बक्की रह गई। उसने तो जान-बूझकर, बढ़ा-चढ़ाकर छुट्टी मांगी थी। इतने दिन वह घर बैठकर क्या करेगी? कंवल मोहन के पास कोई मामला जाता, दूध का दूध और पानी का पानी, दो-टूक फैसला दे देता। कोई लाग-लपेट नहीं।

और फिर उसके दफ्तर वालों को असलियत का पता चल गया। इतने बड़े खाते-पीते घर की बहू-बेटी किरण को नौकरी की क्यों जरूरत पड़ी थी? उसकी अपने घरवाले से अनबन हो गई थी। दो उसके छोटे-छोटे बच्चे थे। और किरण कहती, मैं किसीके मुंह की ओर नहीं देखूंगी, मैं किसीके सामने हाथ नहीं फैलाऊंगी, किसी न किसी तरह अपने बच्चों का पालन-पोषण खुद ही करूंगी।

प्रायः मोटर में आती। इतनी बड़ी कोठी में से निकलते ही, कोई न कोई पड़ोसी उसे लिफ्ट दे देता और दफ्तर के गेट के बाहर उतार जाता।

लेकिन वह लौटती कैसे थी?

एक दिन दफ्तर से छुट्टी के बाद कंवल मोहन ने देखा कि किरण फाटक से निकलकर यों कदम रख रही थी, जैसे पैदल चलना किसीको

आता ही न हो। और आगे-पीछे कोई सवारी नजर नहीं आ रही थी। अचानक कंवल मोहन की मोटर रुक गई और उसने किरण को अपने साथ बिठा लिया। किरण को जैसे अपनी आंखों पर विश्वास न हो रहा हो। कितनी देर, किरण से यह भी न बताया गया कि उसे कहां उतरना है। और फिर जब उसके होंठ हिले, घबराहट में उसके मुंह से जो कुछ आया उसने बक दिया। और कंवल मोहन उसे गलत स्थान पर उतारकर चला गया। मोटर में बैठे हुए, सारा समय कंवल मोहन बोलता रहा। मौसम के बारे में, दिल्ली शहर के यातायात के बारे में, महंगाई के बारे में, दैनिक उपयोग की वस्तुओं की कमी के बारे में।

और फिर प्रायः यों होता, दफ्तर छूटने पर जब कभी किरण उसे नजर आ जाती, कंवल मोहन उसे मोटर में बिठाकर, जहां भी वह चाहती उसे उतार जाता। इतनी कोमल, इतनी छुई-मुई वह लगती थी कि ऐसा प्रतीत होता कि सड़क पर चलते हुए वह मैली-मैली हो जाएगी। और फिर जब से उसने उसके पति के साथ उसकी गलतफहमी का सुना था, कंवल मोहन को किरण पर एक तरस-सा आने लगा था, खास तौर पर जब वह उसे फाइलों का पुलिन्दा उठाए हुए, एक कमरे से दूसरे की ओर जाते हुए देखता।

कुछ दिनों बाद, कंवल मोहन को यों लगता, जैसे किरण के लिए उसके दिल में एक टीस-सी पैदा हो रही हो। लेकिन किरण तो उसकी मातहत थी। अफसर और मातहत का रिश्ता। वह अपने-आपको और सिकोड़ लेता और तटस्थ हो जाता। बिन मतलब कोई बात न करता। जब मुंह खोलता, नपी-तुली बात करके खामोश हो जाता।

और कंवल मोहन की यही अदा तो किरण को खास तौर पर पसन्द थी। जैसे कोई बाड़ के उस ओर खड़ा हो। और किरण का जी चाहता कभी वह फलांग कर उस पार जा पहुंचे।

लेकिन यह मंजिल कितनी दूर थी! कभी-कभी किरण को लगता, जैसे चलते-चलते उसके टखने जवाब दे जाएंगे। जैसे-जैसे कंवल मोहन उसे अच्छा-अच्छा लगने लगा, सारी दुनिया पीछे छूटती जा रही थी। बहन-भाई, दोस्त-रिश्तेदार, दफ्तर में काम करने वाले साथी। हर रोज सुबह-

सुबह, कंवल मोहन का मुंह देखने के लिए किरण पलकें खोलती। हर रोज कंवल मोहन को अच्छा लगने के लिए सजती। हर राह उसे कंवल मोहन की ओर ले जा रही महसूस होती।

लेकिन कंवल-मोहन तो कहीं भी नहीं था। किरण की दुनिया खाली-खाली थी।

एक बार छुट्टी के दिन किसी जरूरी काम से कंवल मोहन को दफ्तर आना पड़ा। उसके अमले में, किरण के अलावा किसी और के यहां टेलीफोन नहीं था। उसने उसे मदद के लिए बुला लिया। सारा दिन वे फाइलें देखते रहे, ब्यौरा तैयार करते रहे, कंवल मोहन लिखता रहा और वह टाइप करती रही। शाम हो गई, रात पड़ गई, अच्छा-खासा अंधेरा हो गया और कंवल मोहन थकी-मादी किरण को उसके घर उतारकर चला गया।

एक दिन छुट्टी के बाद किरण को अपनी मोटर में बिठाए जब वह छोड़ने जा रहा था कि एकदम बारिश होने लगी। मेंह और झक्कड़। एकदम जैसे घड़ों पानी पड़ने लगा हो। आंधी उड़ा-उड़ाकर फेंकती। सड़क पर कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। पेड़ टूट-टूटकर औंधे गिर रहे थे। और कंवल मोहन ने अपनी मोटर सड़क के एक किनारे रोक दी। बारिश भी कहे जैसे आज ही आज है। झक्कड़ भी कहे जैसे आज ही आज है। कितनी देर वे यों मोटर में बन्द बैठे रहे। किरण कभी हंसने लगती, कभी उसे डर लगने लगता। बिजली कैसे चमकती थी! बादल कैसे गरजते थे! कंवल मोहन वैसे का वैसा बैठा रहा। जब तूफान थम गया, वह किरण को उसके घर पहुंचाकर चल दिया। वह उसको धन्यवाद तक न दे पाई।

एक बार किरण से अपने काम में कोई भूल हो गई। भूल गंभीर थी। जो भी सुनता उसे किरण पर तरस आता। इस तरह की गलती पर तो चाहे उसे नौकरी से भी अलग कर दिया जाए। कम से कम तरक्की तो जरूर रुक जाएगी। हो सकता था कि उसे उसके पद से नीचे उतार दिया जाए। जो कोई उससे मिलता, हाथ मलने लगता। उसके साथ काम करने वाले कर्मचारियों के चेहरे उतरे हुए थे।

फाइल कंवल मोहन के पास गई हुई थी। पता नही क्या कहर ढहने वाला था ! कंवल मोहन का गुस्सा बुरा। और फिर फाइल बाहर आई। सारे अमले की ऊपर की सास ऊपर और नीचे की नीचे थी। दोपहर एक अफसर ने फाइल को चपरासी से लिया और फिर सबके चेहरे खिल गए। फाइल पर कवल मोहन ने लिखा था—इस तरह की गलती कभी हो जाती है। इस मामले को यही खत्म कर दिया जाए।

मेहरबान था, उदार था, लेकिन कंवल मोहन उससे कोसों दूर था। कभी-कभी किरण को यों लगता जैसे उसकी मंजिल का कोई ठौर-ठिकाना न हो। जब उसे यह महसूस होता, अपनी जिंदगी उसे फीकी-फीकी-सी लगने लगती—जैसे कोई हारा हुआ खिलाड़ी हो। न उसे खाना अच्छा लगता न पीना। एक हसीन औरत की जिद।

इस भटकन मे वह थी कि किरण की अपने पति से सुलह-सफाई हो गई। गलतफहमी थी, दूर तो उसे होना ही था; लेकिन इस बार समय कुछ ज्यादा लग गया था। कई महीने बीत गए थे। एक बार उसकी अपने पति से अनबन दूर हो गई तो फिर किरण को नौकरी करने की कोई जरूरत नही रही। लाखो का उसके घरवाले का व्यापार था। किरण के वेतन के बराबर तो कई कर्मचारी उसकी फर्म में काम करते थे। पहले किरण ने छुट्टी ली, लम्बी छुट्टी। फिर त्यागपत्र दे दिया।

अपने बच्चो की जिम्मेदार मा, अपने पति की चहेती पत्नी, अपने घरवालो की सुशील बहू-बेटी, किरण हर समय हंसती रहती, खेलती रहती। उठते-बैठते मुस्काने बिखेरती रहती। छोटा-बडा हर कोई उसे यों सिर पर उठाए रहता, जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो।

और किरण जब अपने दिल के आईने मे देखती, उसका अंग-अंग कंवल मोहन के लिए कृतज्ञता से ओतप्रोत हो जाता। जैसे उसके अतःकरण की किसी तह मे एक बादल ढका पड़ा हो। एक नया शिवालय। जिन्दगी के अंधेरे से अंधेरे पडाव पर वह एक नजर अन्दर झाककर देखती और किरण की राह रोशन हो जाती। उसका अंग-अंग विभोर हो उठता।

एक शराफत का सदका, किरण ने फिर कभी हालात से हार नहीं खाई। जिंदगी फिर कभी उसे पछाड़ नहीं सकी।

कड़ा और करामात

मारे शरम के मेरी आखें नही उठ रही थी। मैंने उसे देखा और मेरे पसीने छूटने लगे। मेरा चेहरा पीला जर्द हो गया। मुझे लगा मानो दुनिया फिर पत्थर और धातु के युग में पहुंच गई हो। हम सब वहशी थे। मेरे आगे-पीछे, सब ओर खूख्वार जानवर खड़े थे। शहर जंगली जानवरों से भरे पड़े थे। खून के प्यासे, बर्बर, राक्षस, चांडाल, हत्यारे, घातक, डाकू, कातिल।

उसकी बेड के आगे-पीछे खड़े डाक्टर और पुलिस अफसर को मैंने बताया, "मै इस मरीज को जानता हूं।" मेरी आंखों में आंसू उमड आए थे। मेरी नाक के नथुने जैसे मिर्चो के छौक से भुन रहे हो। "मैं जानता हूं। यह ताहिरा बाजी है। ताहिरा जमाल! मेजर जमालुद्दीन की बीवी।"

"क्या मतलब?" पुलिस अफसर ने हैरान होकर मुझसे पूछा।

"लाहौर मे वारिस रोड पर, पन्द्रह नम्बर की इनकी कोठी है।"

"यह कैसे हो सकता है?" पुलिस का अफसर परेशान लग रहा था।

"···इधर आने मे पहले हम पड़ौसी थे। कितने बरस हम इकट्ठे रहे। बहन-भाइयों की तरह। इनके यहा कभी गोमास नहीं पका था और हमारे यहा कभी पोर्क······।" मै यू बोल रहा था कि पुलिस अफसर ने मुझे टोककर बताया कि मरीज को वे लोग पाकिस्तान से निकालकर लाए थे, लायलपुर के कैम्प मे से।

एक क्षण-भर के लिए उसे होश आया, उसने आखें खोली और फिर बेहोश हो गई। बस, जिंदगी और मौत के बीच कुछ सासें अटकी हुई

थी। उसकी जेब टटोलते हुए एक पुर्जा मिल गया था, जिसपर मेरा पता था। और फिर हस्पतालवालों ने पुलिस की मदद से मुझे बुलवा भेजा था।

"लेकिन यह मुसलमान लड़की कैसे हुई ?" पुलिस अफसर हैरानी में जैसे अपने-आपसे सवाल कर रहा था।

"कोई मुसलमान कैसे होता है ?" मैंने खीझकर उसकी ओर देखा।

"जनाबे-आली ! इस मरीज पर सैकड़ों रुपये खर्च करके हम इसे पाकिस्तान से निकालकर लाए हैं। इसके साथ पाकिस्तानी गुडों ने मुह काला किया। रिफ्यूजी कैंप के शरणार्थियों ने इसे बडी मुश्किल से बरामद किया बताते हैं। और फिर डाक्टर के मशवरे पर इसे हवाई जहाज में डालकर दिल्ली भेज दिया गया।" पुलिस अफसर बार-बार मरीज की गोरी बांह में कड़े की ओर देख रहा था।

"यह कड़ा मेरा है।"

"क्या मतलब ?" पुलिस अफसर चौक उठा।

और फिर मैंने उसे अपनी खाली कलाई दिखाई। पहले दायी फिर बायी। मेरे कड़ा नहीं था।

"कल ही तो मैंने इसे कडा पहनाया था।"

पुलिस अफसर और भी चकित हो उठा। पाकिस्तान के एक शहर में से बरामद की गई लडकी, जिसपर वहा के फसादियों ने अत्याचार किया था, उसे दिल्ली निवासी एक सिक्ख अफसर कड़ा कैसे पहना सकता था ?

और फिर मैंने पुलिस अफसर को यकीन दिलाया कि ताहिरा बाजी को मैंने कल ही हवाई जहाज में लाहौर भेजा था। हमारे यहा से, चलने से पहले उसने कहा, 'तुम मुझे अपना यह कड़ा दे दो, रास्ते मे मुसलमान समझकर मुझे कोई परेशान न करे।" और मैंने हंसते हुए अपना कड़ा उतारकर उसे पहना दिया। इतने मे ताहिरा बाजी ने फिर आखें खोली, और मुझे सामने खडा देखकर जैसे उसकी जान मे जान आ गई हो। वह मेरी ओर देखती रह गई। मैंने आगे बढकर उसके हाथ को थाम लिया और उसके माथे को चूमा। मेरी पलको मे से टप-टप आसू बह रहे थे।

ताहिरा बाजी बिट-बिट मेरी ओर देख रही थी। उसकी आंखों में आंसू सूख गए थे।

इस बार जब ताहिरा बाजी को होश आया, तो फिर मैंने उसे गश नही आने दी। इतने मे टेलीफोन करके मैंने अपनी पत्नी को भी बुलवा लिया। मुझे और मेरी पत्नी को देखकर ताहिरा बाजी को अपनी आखो पर विश्वास नही हो रहा था। बार-बार मेरी बाह पर हाथ फेरकर देखती, बार-बार मेरी पत्नी के चेहरे को टटोलती। यह सपना तो नही था ? आखें खोलती, और विश्वस्त होकर फिर पलकें मूद लेती।

मैंने, और मेरी पत्नी ने इस बात की तसल्ली कर ली थी कि ताहिरा बाजी को पाकिस्तान से निकालकर लाया गया था। कोई गलतफहमी नही थी। हमें यह यकीन हो गया था कि भारत में ताहिरा बाजी के साथ कोई ज्यादती नही हुई थी। कितनी मुसीबत से हमने उसे हवाई जहाज में सीट लेकर दी थी। कितनी सिफारिशें। फिर भी टिकट के लिए चार गुना पैसे देने पड़े थे। जो हवाई जहाज भारत से पाकिस्तान शरणार्थियो को निकालने के लिए जाते, उनमें मुसलमान महाजर कह-कहलवा कर, सीटें ले लेते थे।

लेकिन ताहिरा बाजी महाजर थोड़े ही थी। वह तो लाहौर की रहने वाली थी। उसका घरवाला लाहौर में इतना बड़ा अफसर था। हमने कितने दिन इकट्ठे काम किया था। बहन-भाइयों की तरह इकट्ठे रहे थे। ताहिरा बाजी के कुछ रिश्तेदार बेशक, इधर भारत में थे। तो फिर क्या ?

डाक्टर ने हमें बताया कि मरीज के साथ बड़ा जुल्म हुआ है। वहशियो की तरह इसके साथ सुलूक किया गया। एक तो उसके शरीर पर चोट आई है, दूसरे उसे मानसिक आघात पहुंचा है। इस तरह के मरीज का बचा सकना, एक करामात है। यह तो अच्छा ही हुआ, इधर से यह रिफ्यूजी कैम्प मे पहुंची, उधर हवाई जहाज जा पहुचा। और डाक्टर के मशवरे पर इसे इधर भेज दिया गया। तब से बेहोश पड़ी हुई है। हवाई जहाज मे गुम-सुम पड़ी रही। सदमा सचमुच बहुत गहरा था।

सदमा तो गहरा होता ही था। ताहिरा बाजी पाकिस्तान की दीवानी

थी। हमेशा पाकिस्तान के हक में बहस करती। मुस्लिम लीग को बढ़-बढ़कर चढ़ा देती। कायदे-आज़म के गुण गाते हुए इसका मुंह न थकता था। इनके घर के हर कमरे मे कायदे-आज़म की तस्वीरें टंगी थी। उनके सामने फूल चढ़ाती रहती। मैं इसे छेड़ा करता था, "ताहिरा बाजी! इस्लाम मे बुतपरस्ती गुनाह है।" और यह वह सुनकर हंस देती। "कायदे-आज़म की और बात है।" वह कहती। उसकी आंखों में अपने नेता के लिए अनन्त श्रद्धा झलक रही होती।

ताहिरा बाजी कायदे-आज़म को इष्ट की तरह पूजती थी। कितनी-कितनी देर तक बैठी हुई उनके कपड़ों का जिक्र करती रहती। उनकी टोपी का कोण, उनकी ऐनक के सोने के फ्रेम, उनके कोट की जेब मे रेशमी रूमाल, उनके रूमाल में सेंट की खुशबू!

ताहिरा बाजी पाकिस्तान पर मुग्ध थी।

मैने कहा—"पाकिस्तान मे आम नही होगे।"

"हम बेर खाकर गुज़ारा कर लेंगे।"

मैने कहा—"पाकिस्तान मे केले नही होगे।"

"हम खीरे-ककड़ी खाकर वक्त काट लेंगे।"

मैने कहा—"पाकिस्तान में पान नही होगे।"

"हम थूक निगलकर वक्त गुजार लेगे।"

इसपर हम लोग ताहिरा बाजी के मुह की ओर देखते रह जाते।

और फिर पाकिस्तान बनने से कुछ दिन पहले ताहिरा बाजी दिल्ली आई, लखनऊ गई, देहरादून, मसूरी, नैनीताल, एक-एक शहर का दौरा करते हुए, अपने पुराने दोस्त-रिश्तेदारों से मिलती रही। ताहिरा बाजी का मायका अलीगढ में था। कितने दिन अपने मा-बाप के यहा टिकी रही।

और फिर अचानक साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गए। उधर पाकिस्तान मे, इधर हिन्दुस्तान में। ताहिरा बाजी हिन्दुस्तान मे फंस गई। कितने दिन बिलखती रही। उसके पाकिस्तान पहुचने का कोई हीला नही बन पाया। इतना खतरा था, कोई जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार नही था। रेलों पर हमले हो रहे थे। काफिले लूटे जा रहे थे। बस, एक हवाई

जहाज का सफर खतरे से खाली था। लेकिन हवाई जहाज की सीट हासिल करना नामुमकिन था। सीट मिल जाए तो हवाई जहाज तक पहुंचना आसान नहीं था। टैक्सियों और मोटरों पर हमले होते थे। हिन्दू-सिक्ख फसादी मुसलमान महाजरों की बहू-बेटियां छीन लेते थे, सामान लूट लेते थे। जो कोई सामने से बोलता, उसे तलवार के घाट उतार देते थे।

खबर नहीं कि ताहिरा बाजी को यह कैसे पता चला कि हम दिल्ली पहुच गए थे। वह किसी न किसी तरह अलीगढ़ से हमारे यहा आ गई। एक-दो दिन हमारे यहा रही। इतने में मैंने अपने रसूख से उसके लिए एक सीट रिजर्व करवा दी। हवाई अड्डे तक पहुंचने का इन्तजाम कर दिया। हमारे अपने दफ्तर की सरकारी मोटर उसे हवाई अड्डे तक पहुंचा आई। ताहिरा बाजी के पास एक सूटकेस था जिसमें उसके मायके में रखे चांदी के बर्तन और जेवर थे।

चलते समय ताहिरा बाजी ने हंसते-हंसते मेरे कड़े को उतारकर अपनी कलाई में चढ़ा लिया।

"अब कोई खतरा नही।" मेरी पत्नी ने तसल्लीबख्श लहजे में उसकी कलाई की ओर देखते हुए कहा।

और हमने उसे सरकारी मोटर में बिठा दिया। उसके साथ मैंने अपना एक मातहत भी लगा दिया। सुबह तड़के हवाई जहाज छूट रहा था, नही तो हम खुद उसे पहुंचाने जाते। कुछ घंटों के बाद मेरे मातहत ने आकर हमें बताया कि वह उसे हवाई जहाज में बिठा आया था।

"हवाई जहाज गया?" मैंने तसल्ली करने के लिए पूछा।

"जी, मेरे सामने हवाई जहाज उड़ा और तब मैं वहां से चला।" मेरे मातहत ने मुझे विश्वास दिलाया।

बाकी कहानी ताहिरा बाजी की जबानी। लेकिन इससे पहले एक नजर उस दिन के भारत और पाकिस्तान के अखबारों पर।

इस घटना का जिक्र भारत के अखबारों में कुछ इस तरह अंकित किया गया :

पाकिस्तान में बर्बरता की एक और मिसाल। पाच सिक्ख नौजवान एक अबला की इज्जत का बचाने के लिए जान पर खेल गए। लड़की दिल्ली के विलिंगडन नर्सिंग होम में मौत की घड़ियां गिन रही है।

लायलपुर, अगस्त 21, 1947। हमारे संवाददाता ने खबर दी है कि यहा के खालसा कालेज में घिरे हुए हिन्दू-सिख शरणार्थियों को यह टोह मिली कि पाकिस्तानी गुण्डों ने कैम्प के पडोस की एक कोठी में अगवा की हुई मासूम हिन्दू-सिख लडकियो को खराब करने का अड्डा बना रखा है। कैम्प के स्वयंसेवको ने उस कोठी पर हमला किया। इस झड़प में पाच सिख नौजवान शहीद हुए, लेकिन उन्होंने एक सिख युवती को बचा लिया। बाकी लड़कियों को फसादी जीपों में बिठाकर कही ले उड़े।

इसी घटना का जिक्र पाकिस्तान के अखबारों में कुछ इस तरह हुआ :

लायलपुर, अगस्त 21, 1947। हमारे नामानिगार ने इत्तला दी है कि यहा से रिफ्यूजी कैम्प मे हिन्दू-सिख गुंडे बहुत बेकाबू हो रहे थे। उनके जत्थे कैम्प के अगल-बगल मुसलमानों की कोठियों पर हमला करके लूट-खसोट कर रहे हैं। कल के एक हादसे में दो मुसलमान शहरियों की जानें जाती रही। रिफ्यूजियों का भी नुकसान हुआ लेकिन वे अपनी लाशें उठाकर ले गए। सरकार इस कैम्प को जल्दी से जल्दी बंद कर रही है। रिफ्यूजियो को एक काफिले के रूप मे भारत भेजा जा रहा है।

और अब ताहिरा बाजी की कहानी उनकी जबानी—

दिल्ली हवाई अड्डे से उड़ान भरने के बाद, कोई डेढ घण्टे में हमारा हवाई जहाज सीमा पार करके पाकिस्तान जा पहुंचा। नीचे पाकिस्तान की धरती साफ दिखाई दे रही थी। पाकिस्तान के खेत, पाकिस्तान के बागीचे, पाकिस्तान की खाइयां, पाकिस्तान के टीले। और एक नशे-नशे में मेरी आखें मुद गईं। हमारे सपनों का देश पाकिस्तान एक असलियत था। कुछ मिनट, और मैं पहली बार अपने देश पाकिस्तान में

कदम रखनेवाली थी। और मुझे वे सब नारे याद आने लगे जो पाकिस्तान के लिए मैं लगाया करती थी। वे सारे जुलूस और जलसे याद आ रहे थे, जिनमे हम पाकिस्तान की मांग दोहराया करते थे। वे सारे गीत मेरे कानों मे गूजने लगे थे, जो हम पाकिस्तान की शान में गाया करते थे।

इतने मे हवाई जहाज के पायलेट ने खबर दी कि लाहौर में मौसम खराब होने की वजह से, हवाई जहाज को लायलपुर हवाई पटरी की तरफ मोड़ा जा रहा है। फिर क्या था? मैंने सोचा, मै अपने देवर के यहां चली जाऊंगी। वे लोग लायलपुर मे रहते थे। लायलपुर से रात की गाड़ी से लाहौर चल दूगी।

लायलपुर हवाई पट्टी पर जब जहाज उतरा तो मेरा दिल जैसे ठाठें मार रहा सागर हो। हवाई अड्डे पर हिलाल निशान देखकर मुझे एक नशा-सा आ गया। मेरे पाव जमीन पर नही लग रहे थे। उधर मेरा सूटकेस मेरे हाथ में आया, इधर मैं टैक्सी में बैठकर अपने देवर के घर चल दी। उनकी कोठी मशहूर थी। टैक्सी शहर में घुसी, तो मुझे लगा जैसे टैक्सीवाला गलत रास्ते चल दिया हो। टैक्सीवालों की आदत होती है—लम्बा चक्कर काटकर ठिकाने पर पहुंचना, ताकि भाड़ा ज्यादा मिले। मैंने सोचा, ज्यादा पैसे पाकिस्तानी भाई को ही जाएंगे। अब कोई पराया थोड़े ही रह गया है। बार-बार यह सोचकर कि मैं कायदे-आजम के बनाए हुए पाकिस्तान मे सास ले रही हूं, मेरी पलकें मुंद-मुद जाती।

इस बार जब मेरी आखे खुली तो मेरे हाथों के तोते उड़ गए, टैक्सी किसी पराई कोठी मे घुस गई थी। मैंने चिल्लाकर ड्राइवर को डांटा, लेकिन वह सुनी-अनसुनी करके टैक्सी को अंधाधुध कोठी के अंदर ले गया, और मैंने देखा, हमारे पीछे कोठी का गेट फौरन बंद कर दिया गया।

कोठी के पोर्च मे कई मुस्टंडे खड़े थे। मोटर मे मुझे देखकर "सिक्खनी है, सिक्खनी है," कहते हुए टैक्सी पर टूट पड़े। और आख झपकने की देरी में, उन्होने मुझे टैक्सी से बाहर घसीट लिया। मैं गालियां बक रही थी, खफा हो रही थी, बार-बार कह रही थी, "मैं मुसलमान हूं।" लेकिन उन्होने मेरे मुह पर हाथ रख दिया था। मुझे मेरे दुपट्टे के

साथ जकड़ दिया था। "अभी रास हो जाएगी।" उनके लीडर ने कहा और मेरा सूटकेस टैक्सी में से निकालकर अंदर ले गया। "झूठ बोलती है, यह मुसलमान हरगिज नहीं। इसकी बांह में कड़ा पड़ा हुआ है।" बार-बार टैक्सी वाला उन्हें बता रहा था।

इतने में 'जो बोले सो निहाल ! सत श्री अकाल !!' के नारे लगाते हुए कुछ सिक्ख नौजवान कोठी की छत से छलांगें लगाकर आंगन में उतर आए। उनके पास कृपाणें थीं। लेकिन कोठी के गुंडों के पास रिवाल्वर थे। देखते-देखते उनमें से कई ढेर हो गए। लेकिन जान पर खेलकर कुछ सरदार नौजवानों ने मुझे बचा लिया। कोठी में कई और लड़कियां भी बंद की हुई थीं।

मैं सबसे ताजा, सबसे बेकाबू नग थी। मेरे हाथ-पांव जकड़े हुए थे। कभी मुझे इधर घसीट लिया जाता, कभी उधर। कभी मुझे किसीकी लात पड़ती, कभी किसीकी ठोकर। गेंद की तरह मैं लुढ़क रही थी। इस तरह मुझे गश आ गई।

और फिर जब मेरी आंखें खुलीं, मैं शरणार्थी कैम्प में थी। चारों ओर दाढ़ीवाले सरदार देखकर मेरे फिर होश उड़ गए। पाकिस्तान की दीवानी, मैंने सोचा, यह लोग मेरी बोटी-बोटी, तिक्का-तिक्का कर डालेंगे। वैसी की वैसी मैं फिर बेहोश हो गई।

अगली बार जब मेरी आंखें खुलीं तो मैं दिल्ली के नर्सिंग होम में थी।

नर्सिंग होम से छुट्टी पाकर ताहिरा बाजी कई दिन हमारे यहां टिकी रहीं। अभी कमजोरी बहुत थी। लाहौर से उसका मियां और उसके बच्चे उसे लेने के लिए आए। अलीगढ़ से उसके मायके के लोग आए। इतने दिन ताहिरा बाजी की कलाई में कड़ा वैसे का वैसा पड़ा था। आखिर डाक्टर ने उसे सफर करने की इजाजत दे दी। इतने में लाहौर के साथ यातायात आम दिनों जैसा हो गया था। गाड़ियां आ-जा रही थीं। हवाई जहाज दिन में कई-कई चक्कर काटते थे।

लौटते समय वे लोग आम दिनों की तरह रेल में जा रहे थे। हम लोग उन्हें स्टेशन पर पहुंचाने गए। गाड़ी चलने लगी तो मेरी पत्नी ने आगे बढ़कर ताहिरा बाजी की कलाई की ओर इशारा करते हुए कहा, "अब तो यह कड़ा तुम उतार जाओ।"

ताहिरा बाजी ने झट अपनी कड़ेवाली बांह को खींचकर कलाई को सीने से लगा लिया।

समझौता

कुदसिया की यह हरकत उसके शौहर को अजीब लगती थी। शाम होते ही ड्राइवर को खास तौर पर बुलवा भेजती, गैराज में से गाड़ी निकलवाती, बन-सवरकर सैर को निकलती। ब्लश-ग्रान, रैप-अराउण्ड, पैडस्टल सैंडल। और दो फर्लांग दूर, सिटी वुड के बाहर कार रुकवाकर, जूते उतार, हरी घास के मैदान पर नंगे पांव चलने लगती। एक चक्कर, दो चक्कर, चार चक्कर और थक-हारकर गाड़ी में आ बैठती। "भाई ड्राइवर, जल्दी से घर चलो, हमें तो बहुत प्यास लगी है।" हर रोज इस तरह से कुछ कहती और थकी-हारी घर लौट आती। बेगम साहिबा की सैर हो जाती।

अकरम हमेशा कुदसिया पर हंसा करता। लेकिन फिर वह सोचता, शायद उसीकी समझ में कोई फर्क था। कुदसिया की बातें उसे अजीब-अजीब-सी लगती फिर वह अपने-आपको समझता, 'क्या यह बात अजीब नहीं कि एक नवाबजादी ने एक आम सरकारी अफसर से शादी की है?' शादी ही नहीं, एक के बाद एक, दो बच्चे भी पैदा किए थे। तीसरा कुदसिया के पेट में था। और कुदसिया हसती, "मैं तो बच्चे पैदा करने की मशीन हूं।" वह हमेशा यही कहा करती। बसों के पीछे परिवार-नियोजन वालों की खानदानी मंसूबाबंदी के बारे में 'दो या तीन बच्चे होते हैं बड़े अच्छे' इस चेतावनी को 'दो या चार बच्चे होते हैं बड़े अच्छे' कहकर पढ़ा करती थी। और उसका शौहर उसके मुंह की ओर देखता रह जाता। अभी उसकी बीवी, तीसरे बच्चे से नहीं निपटी थी कि उसने चौथे बच्चे की चर्चा शुरू कर दी थी।

उस दिन तो जैसे अकरम के पांव तले जमीन निकल गई हो।

को भी इस बात का एहसास हो। शायद वह भी यों ही शराफत का भरम बनाए हुए थे। शाम को खाना खाकर, साधारण कपड़ों में मामूजान बाहर टहलने के लिए निकलते, अंधेरा हो रहा होता। इधर वह बाहर कदम रखते, उधर नानीजान उनकी शेरवानी में दस का नोट रखकर खिड़की में से उन्हें थमा देती। गली के अंधेरे में वह शेरवानी पहनकर जेब में पैसों को टटोलकर, अपनी महबूबा के कोठे पर जा बैठते। सारी रात गाना सुनते। सुबह इससे पहले कि घर वाले सोकर उठें, वे अपनी चारपाई पर आकर लेट जाते। और फिर दोपहर तक पड़े रहते। सारे मोहल्ले को, सारे शहर को उनकी इस हरकत का पता था।

उन दिनों का जिक्र करते हुए कुदसिया के मुंह में जैसे पानी आ जाता। कई बार अकेली बैठी हुई इस तरह की जिन्दगी के चटपटेपन के बारे में सोचती रहती। सोच-सोचकर सरशार होती रहती। स्वाद-स्वाद।

अब तो उसका जीवन बिल्कुल फीका हो गया था—फीका और नीरस। कोई झूठ नहीं, कई चोरी नहीं, कोई फरेब नहीं।

बेशक कुदसिया को झूठ से नफरत थी, चोरी से परहेज था, फरेब से वह बचती रहती थी। लेकिन कोई मासूम गुनाह होते हैं। इस तरह की हरकतों में एक अजीब रंगीनी होती है। और कुदसिया इस तरह की जिन्दगी के लिए कभी-कभी तरसने लगती।

इस तरह जैसे कोई सज-धजकर हरी घास पर नंगे पांव टहलने लगे।

काफी क्लब में, अड़ोसिनों-पड़ोसिनों के साथ उठते-बैठते हुए, गली-मोहल्ले में मुलाकात के दौरान जब कुदसिया बी की सहेलियां अपने घर-वाले की बेहूदगियों का जिक्र करती तो कुदसिया का जी चाहता—काश, इस तरह की कोई शिकायत वह भी अपने शौहर के बारे में कर सकती। कम्बख्त उसपर जान देता था। कुर्बानी का पुतला। जैसा जवानी में मुहब्बत के दिनों में था, बिल्कुल वैसा ही अब तक था। क्या मजाल जो किसीकी ओर आंख उठाकर देख जाए। दफ्तर जाएगा, दफ्तर से सीधा घर लौटेगा और फिर सारे प्रोग्राम बीवी के साथ। 'एक आत्मा दो शरीर,' कुदसिया सोचती। उसका बेटा जवान हो रहा था। इतना सुन्दर लड़का

है, उसपर तो लड़कियां जान छिड़केंगी। वेटा पढ़ा-लिखा, भरपूर जवान हो गया। लेकिन वह तो अपने बाप से भी चार कदम आगे था। क्या मजाल जो किसीसे फालतू बात करे। कभी उसकी कोई शिकायत नहीं आई। जो कोई कुदसिया से उसके बेटे के बारे में बात करता, इसकी तारीफ करते-करते उसकी जबान न थकती। पढ़ाई के दौरान पढ़ने से मतलब। और अब, जब से नौकर हुआ था, आठों पहर अपने काम से काम।

कुदसिया सिनेमा देखने की शौकीन थी। कभी उसका घरवाला उसका साथ देता, कभी उसका बेटा उसके साथ जाता। आए-गए को सिनेमा दिखाने ले जाती। हर तसवीर में कोई न कोई त्रिकोण बन जाता। कभी कोई मर्द पराई औरत पर डोरे डाल रहा होता, कहीं कोई औरत पराये मर्द का पीछा कर रही होती। उलाहने, ताने, रोना-धोना, गाली-गलौच। और फिर प्रायः सब कुछ ठीक हो जाता। आखिर में हर किसीको होश आ जाती। जिन्दगी में एक रंगीनी पैदा होती, एक चटपटापन उजागर होता और फिर जिन्दगी अपनी डगर चलने लगती। इस तरह का हंगामा कुदसिया की जिन्दगी में कभी नहीं आया था। उसकी इच्छा होती, कभी उसका शौहर शाम को देर से घर लौटे, वह उसका इंतजार करे, इंतजार करते हुए थक जाए। उसका जी चाहता, कभी उसका जवान बेटा बेवक्त घर से बाहर निकले और वह हरगिज उससे न पूछे कि वह कहां जा रहा है, कब लौटेगा। क्यों कोई किसीपर सवाल करे और दूसरे को झूठ बोलने के लिए मजबूर करे?—कुदसिया सोचती और उसे अजीब-अजीब लगता। एक खोयापन-सा उसे कभी भीतर ही भीतर कचोटने लगता। यों लगता जैसे उसकी कोई चीज गुम हो गई हो और वह झुंझलाई-सी रहने लगी। हर समय चिढ़ी हुई-सी, खफा-खफा।

लेकिन अब कुछ दिनों से कुदसिया असाधारण तौर से खुश थी। हर समय हंस रही, हर समय मजाक कर रही, जैसे पहले कभी उसकी आदत होती थी। कुदसिया को स्वयं इसका कारण नहीं मालूम था। और फिर एक रात अचानक उसे जब यह राज मालूम हुआ तो वह पानी-पानी हो गई।

बात यों हुई, उनकी बेटी का कुत्ता जवान हो गया था। पिछले कुछ दिनों से उसपर एक मुसीबत आई हुई थी। जब दाव लगता, वह बाहर निकल जाता। और पता नहीं कहां-कहां झक मारता रहता। हर रात चुपके से खिसक जाता और मुंह अंधेरे दुम हिलाता लौट आता। उनकी बेटी को जब पता चला तो उसने कोठी का गेट बन्द रखना शुरू कर दिया। कुत्ते ने घर की चारदीवारी में एक सूराख ढूंढ लिया। कुछ दिन वह इस रास्ते से गायब होता रहा। जब उसकी यह चोरी पकड़ी गई तो घरवालों ने ईंटों से वह सूराख बन्द करवा दिया। अब कुत्ता बहुत परेशान था। कोठी के गेट के पास बैठा एकटक बाहर झांकता रहता। कुदसिया से यह न देखा गया और जब घर वाले सो जाते तो वह चुपके से गेट खोलकर कुत्ते को बाहर निकाल देती। और फिर इससे पहले कि परिवार का कोई आदमी जागे, सुबह ही सुबह फाटक खोलकर वह कुत्ते को अन्दर ले आती।

हर दूसरे-तीसरे महीने जब कुत्ते पर मुहब्बत सवार होती, कुदसिया चुपके से हर रात उसे बाहर निकाल देती और यह राज...कुत्ते का और कुदसिया का, किसी और को कभी पता नहीं चला।

अपने बच्चों की दुलारी मां, अपने घरवाले की महबूब बीवी, अपने पड़ोसियों की हर-दिल-अज़ीज पड़ोसिन कुदसिया की जिन्दगी यूं गुजरने लगी जैसे सोये-सोये पानियों पर किसी सुघड़ नाविक की नाव फिसलती जा रही हो।

ऊबा हुआ आदमी

लंदन, पेरिस, जेनेवा, रोम, फ्रैंकफर्ट। कई दिनों से वह विदेश घूम रहा था। नये-नये शहर, नये-नये लोग। पिछले कुछ दिनों से उसको अजीब-अजीब लग रहा था। उसको अपना देश याद आने लगा था। अपना भारत। अपने देश के लोग। अपने देश का रहन-सहन। अपने देश के गीत। अपने देश की गलियां। अपने देश की लड़कियां। अपने देश का खाना।

कल शाम, काफी तलाश करके, ताजमहल नाम के एक हिन्दुस्तानी होटल में वह खाना खाने गया था। सरसों का साग, मक्के की रोटी और मक्खन। गाजर का हलवा। ढेर सारे मार्क उसने खर्च किए, पर फिर भी उसकी तसल्ली नहीं हुई। एक अभाव-सा उसको खल रहा था।

आज शाम वह बेमतलब बाजार में घूम रहा था कि उसने एक जगह भीड़ में सड़क के किनारे एक आदमी को ऊंचा-ऊंचा पुकारते हुए सुना—"जिन्दा सेक्स देखने के लिए आओ। स्टेज पर जिन्दा सेक्स।" उसने सुना और उसकी आंखें झुक गईं। किस तरह के ये शहर हैं! किस तरह के ये लोग हैं!

उसको अपना-आप मैला-मैला लगने लगा। जैसे उसके कानों में किसीने कूड़े का टोकरा उलट दिया हो। उसे अपने आसपास से एक अजीब तरह की बू आने लगी। यह दुर्गन्ध जैसे उसका पीछा कर रही हो। शाम-भर वह दीवानों की तरह गली-गली भटकता रहा। एक अजीब तरह की बेचैनी।

वह सोचता, वह टिकट कटवाकर वापस स्वदेश चला जाए। पर अभी तो उसका ढेर सारा काम बाकी था। अभी तो और कई दिन पश्चिम

में उसे शहर-शहर घूमना था। वह सोचता, जो कुछ उसको सड़क के किनारे खडा वह आदमी दिखाने के लिए बुला रहा था, वह सब कुछ देखने से क्या वह बच सकेगा ! इस तरह का कुछ-कुछ तो उसको हर गली के कोने मे, हर सडक के किनारे नजर आ जाता था। वृक्षों के नीचे बेंचों पर, बगीचो की झाडियों के ओट मे; और तो और बसों में, औरतें अपने चाहने वालो की गोद मे जा बैठती। एक-दूसरे को चूमते हुए जैसे उनकी समझ मे न आ रहा हो, वे अपने-आपसे क्या करें।

कई दिनो से इस तरह के तमाशे देखते-देखते, आज शाम उसके सब्र का प्याला जैसे छलकने लगा हो। उसने अपने एक दोस्त से अपनी हालत का जिक्र किया तो वह खिलखिलाकर हसने लगा। उसने अपनी जेब से सुबह का अखबार निकाला और यह खबर पढकर सुनाई :

"एक हवाई जहाज मे एक मर्द और औरत जहाज की उड़ान के समय कहने लगे, हम तो यही, इसी समय एक-दूसरे के साथ सोयेंगे। और उन्होंने भरे जहाज मे सब मुसाफिरो के सामने वह सब कुछ किया जो दरवाजे बन्द करके दस पर्दों में पति-पत्नी करते है। कितनी देर वैसे के वैसे अपनी सीटों पर एक-दूसरे से लिपटे पड़े रहे।"

और उसको बार-बार अपने भारतीय सदाचार की याद आने लगती। भरे-पूरे परिवार मे मजाल है, किसी नव विवाहित पति-पत्नी के जोड़े को बरसो तक किसीने बात करते भी सुना हो। आध-आध दर्जन बच्चों को औरतें जन लेती और घर में कोई पखेरू तक नही कह सकता या किसीको अपने मर्द के साथ बैठे कभी किसीने देखा हो।

उस शाम टैक्सी मे बैठा वह अपने होटल की ओर जा रहा था; टैक्सी चला रही लडकी उसकी ओर देख-देखकर मुस्कराने लगी। एक शैतान मुस्कराहट। अभी कुछ दूर आगे निकले होंगे कि उस लड़की ने अपनी जादू-भरी आवाज में कहा, "सर, आपको जाड़ा नहीं लगता ? आज शाम अचानक ठंड हो गई है। मेरी मोटर का हीटर काम नही कर रहा। आप बेशक मुझे अपनी बाहों में भर लें। आपको गर्माहट पहुँचेगी। मैं मोटर चलाती रहूंगी। मुझे कोई फर्क नही पड़ता।" और उस लड़की के बाल उसके कंधों पर नाच रहे थे। यही कोई बीस-बाइस

साल की उम्र।

"मै पन्द्रह साल की थी जब मैंने टैक्सी चलाना शुरू किया," लड़की ग्रापसे-ग्राप बोलती जा रही थी। "इन सड़कों पर मैं ग्राखें बन्द करके टैक्सी चला सकती हू। मेरा ब्वाय फ्रेंड कहता है, पिछली बार मुझे टैक्सी मे गर्भ हुग्रा था। टैक्सी चलाते-चलाते मुझे गर्भ ठहर गया। है न ग्रजीब बात ? जिसको भी यह बताती हूं, कोई भी नही मानता। पर शायद है यह सच।"

"हैलो, हैलो, हैलो।" इतने में मोटर के स्पीकर मे से ग्रावाज ग्राने लगी, "एक-टैक्सी वेसलर हाफ होटल में चाहिए।"

"मैं जा रही हूं। ग्रगले दो मिनटो मे वहां पहुंच जाऊंगी। मेरा नम्बर 75/6 है।" लड़की ने डैश बोर्ड में लगी एक कमानी को दबाकर जवाब दिया। ग्रौर जैसे वह सब कुछ भूल गई हो, वह टैक्सी को तेज ग्रौर तेज दौड़ाने लगी।

"ग्राजकल बड़ा मंदा चल रहा है।" ग्रब वह फिर ग्रापसे-ग्राप बोल रही थी। "शुक्र करते है ग्रगर कोई सवारी मिले। खासकर इस इलाके में इतनी टैक्सियां इधर बेकार खड़ी रहती है! इधर से लौटते हुए तो मुझे कभी सवारी नही मिली। कोई मानेगा, वेसलर हाफ में बाहर से ग्राई हुई टैक्सी सवारी उठाकर ले गई ? शायद मुझे हवाई ग्रड्डे जाना होगा। इस इलाके में सवारी बस, हवाई ग्रड्डे की मिलती है। हवाई ग्रड्डे का एक चक्कर ग्रौर समझो दिन-भर की रोजी निकल ग्राई। ग्राज मुझे जल्दी घर पहुंचना है। मेरी बेबी की तबियत कुछ ढीली-सी है। पोलियो का टीका लगवाया था, उसे बुखार ग्रा गया है। बच्ची घर में ग्रकेली है। कही पड़ोसियों को पता चल गया तो वे पुलिस को शिकायत कर देंगे। मेरा ब्वाय फ्रेंड तो नही ग्राया होगा। बच्ची का बाप नहीं ग्राया होगा ग्रौर पुलिस वाले ग्राकर बच्ची को थाने ले जाएंगे कि मैं ग्रपनी बच्ची को खाली घर में बिलकुल ग्रकेली छोड जाती हू। तो फिर कोई क्या करे ? रोजी तो कमानी पड़ती है। पेट तो भरना ही है। बेबी का बाप तो ग्रगला बच्चा पैदा करने की चिन्ता में है। ये मर्द !"

वह ग्रापसे-ग्राप बोलती जा रही थी, बोलती जा रही थी। उसे खीझ

आई और उसने वहीं की वहीं टैक्सी रुकवा ली। पैसे दिए और टैक्सी से उतर गया।

टैक्सी चला रही लड़की ने एक बार भी उसकी ओर मुड़कर नहीं देखा और जल्दी-जल्दी वेसलर हाफ की तरफ निकल गई। उसकी अगली सवारी उसकी बाट देख रही थी।

सड़क पर खड़े-खड़े उसकी समझ में नहीं आ रहा था, वह किधर जाए, क्या करे?

कितने लोग थे, पर कोई नहीं था जिससे वह बात कर सके। कोई नहीं था जिसे वह अपनी बोली में कहे कि वह थक गया था। थकने की तो कोई बात नहीं थी। शायद वह उदास था। उदास होने की भी कोई बात नहीं थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, उसे क्या हो रहा था। उसका जी चाहता वह रोने-लग जाए। उसकी आंखें जैसे छलछला रही थीं। उसके नथनों में जैसे कांटे चुभ रहे हों। उसको आगे-पीछे सब रूखा-रूखा लगता। भरी सड़क पर उसे लग रहा था जैसे वह किसी वीराने में खड़ा हो, रेत ही रेत, सूखा ही सूखा। मरुस्थल की तेज हवाएं, उसे जैसे कंपकंपी छूट रही हो। उसको पता नहीं चल रहा था वह किधर जा रहा है। सूखे-सूखे होंठ, मुरझाया-मुरझाया चेहरा, उलझी-उलझी, सहमी-सहमी नजरें।

और फिर एकदम जैसे वह खिल-सा गया। सामने सड़क पर कोई अपनी तरफ का था। काली शेरवानी, कराकुली टोपी। चाहे कोई पाकिस्तानी हो। तो फिर क्या हुआ? अपनी बोली तो बोलता होगा। अपनी बोली में किसीसे खफा होना···। उसकी आंखों के सामने अपने गांव के खेत, खेतों में चर रहे ढोर-डंगर घूमने लग गए।

पर वह आदमी तो सड़क पार कर रहा था। क्षण-भर में वह सड़क के दूसरी ओर पहुंच गया और फिर एक अटूट पंक्ति मोटर कारों की, ट्रामों की, ट्रकों की बनकर रह गई। मोटरें, मोटरें और कुछ भी नहीं।

वह फिर थका-थका महसूस करने लगा। उसका दिल फिर बैठने लगा। उसकी रगों में क्षण-भर के लिए उभरा उत्साह जैसे एकदम किसीने निचोड़ डाला हो।

और उसने फैसला किया, वह स्वदेश लौट जाएगा। बाकी का काम कोई और कर लेगा। और वह एयर इंडिया के दफ्तर की ओर चल पड़ा। जो भी फ्लाइट मिलेगी उसमें वह अपने देश लौट जाएगा। एयर इंडिया का दफ्तर तो अगले मोड़ पर था और वह तेज-तेज कदम उधर चल पड़ा। यह फैसला करते ही जैसे उसकी थकावट उतर गई हो।

एयर इंडिया के दफ्तर का स्प्रिंगों वाला दरवाजा खोल, उसने अन्दर कदम रखा ही था कि सामने बैठी हुई एक हिन्दुस्तानी लड़की उसे नजर आई। वह काउंटर पर बैठी कुछ हिसाब-किताब कर रही थी। उसको देखते ही जैसे उसे ठंडक पड़ गई हो। पास ही कोने में रखे सोफे पर वह वैसे का वैसा बैठ गया। नरम-नरम सोफे पर बैठा, वह एकटक हिन्दुस्तानी लड़की को देख रहा था। उसका मोटा-भारी अजंता के स्टाइल का जूड़ा, उसके माथे की बिन्दी, उसके हल्के-हल्के रंगे हुए होंठ। उसके कानों में झूल रहे झुमके। उसके जूड़े में से झांक रही गुलाब की अधखिली कली। लड़की बैठी हुई किसी काम में व्यस्त थी। और वह उसकी ओर देखता जा रहा था, देखता जा रहा था। कितना समय इस तरह बीत गया। फिर कोई ग्राहक आया, लड़की ने उसका काम निपटाया। फिर एक और, एक और। और कुछ देर में उसके सामने एक लम्बी लाइन लग गई।

उसे जैसे अपनी सारी उदासी भूल गई हो।

और वह सामने मेज पर पड़ी अपने देश की अखबारें पढ़ने लग गया। वही खबरें। स्कूल-कालेजों में लड़के-लड़कियों की हड़तालें। रेलवे के कर्मचारियों की हड़तालें। कोयला खान मजदूरों की हड़तालें। तालाबंदियां। महंगाई का रोना-धोना। मानसून का फिर धोखा दे जाना। सूखा पड़ने की दुहाई। अनाज का गोदामों में सड़ जाना। चोरबाजारी। बीच-बिचौलियों का अपने हाथ रंगना। भुखमरी की शिकायतें। चोरी-डाके, लूट-खसोट। धोखा-धड़ी, कानी बांट। गरीबमार। अशिक्षा। अंधविश्वास। और उसके कानों में अचानक उस दिन बाजार में सुने किसीके बोल गूंजने लगे—'जिन्दा सेक्स देखने के लिए आओ। स्टेज पर जिन्दा सेक्स······' 'सर, आपको जाड़ा नहीं लगता। आज शाम अचानक ठण्ड

हो गई है। मेरी मोटर का हीटर काम नही कर रहा। आप बेशक मुझे अपनी बांहों में भर लें। आपको गर्माहट पहुंचेगी···पिछली बार मुझे टैक्सी मे ही गर्म हुआ था। मैं उसकी गोद में बैठी टैक्सी चला रही थी। टैक्सी चलाते-चलाते मुझे गर्म ठहर गया·······'

इस तरह की आवाजें उसके कानों में गूंज रही थी और अखबारों में छपी खबरें धुंधली पड़ने लग गईं। फिर अंधेरा-अंधेरा हो गया। अंधेरा-अंधेरा और चक्कर-चक्कर। उसकी समझ में नही आ रहा था कि वह अपने देश वापस जाए या वही रुका रहे।

तीसरा, सबसे लाड़ला

हम लोग गाव जा रहे थे। भाभी के साथ बड़ा अन्याय हुआ था। उसका तीसरा, सबसे लाड़ला बच्चा बब्बल नहर में डूबकर मर गया था। स्कूल के बच्चे खेल रहे थे। खेलते-खेलते, किसी बच्चे ने उसका पीछा किया। बब्बल बहुत तेज दौड़ता था। उसका पीछा कर रहा बच्चा, उससे भी ज्यादा। तेज दौड़ते-दौड़ते बच्चे, स्कूल के सामने, नहर के किनारे जा निकले। और इससे पहले कि बब्बल अपने कदम रोक सकता, वह एकाएक नहर में जा गिरा। उसके पीछे दौड़ रहे बच्चे ने शोर मचाया। कई लोग इकट्ठे हो गए। बच्चे की लाश कोई कोस-भर दूर तैरती हुई मिली।

हम लोग खास तौर पर शर्मिन्दा थे। हमने ही तो बडे भाई साहब और भाभी को गाव मे रहने के लिए राजी किया था। गाव में ढेर सारी जमीन थी। हम दोनों छोटे भाई, फौज में मुलाजिम थे। जमीन की संभाल बड़े भाई साहब और भाभी करते थे। भाई साहब की तबियत तो ढीली-ढाली चलती थी। खेती-बाड़ी का सारा काम भाभी ने ही सभाला हुआ था। लाजवाब औरत थी! सुघड़ और सयानी। कामगरों को खुश रखती, अपना पेट भी पालती और हम दोनों को भी कुछ न कुछ भिजवा देती। कभी थोड़ा, कभी ज्यादा।

और अब, जब कि उसका यों बच्चा जाता रहा था, हमें डर था कि भाभी अब गांव में नही रहेगी। गाव, उसे खाने को पड़ता होगा।

बब्बल, चाहे सबसे छोटा था, लेकिन था सबसे सुन्दर। पक्का रंग, मुसकानें बिखेरती हुई चचल आखें, पढ़ने मे होशियार। हमेशा परीक्षा में प्रथम आता। जितना पढ़ने में तेज उतना ही खेलने का शौकीन। दिन-

रात गली-मुहल्ले के बच्चों के साथ कोई न कोई खेल खेलता रहता। हू-ब-हू भाभी का मुह-माथा। हू-ब-हू भाभी की आदतें। छोटा-सा था, लेकिन फिर भी खेतों का चक्कर हर रोज काट आता। गाय-भैंस की देख-रेख में भाभी का हाथ बंटाता। बड़े भाई साहब और भाभी उसपर आस लगाए बैठे थे कि बड़ा होकर जमीन का काम संभाल लेगा। बाकी दोनों बच्चे तो बिलकुल शहरी थे। जब अवसर मिलता, कभी इस चाचा के यहां, कभी उस चाचा के यहां, छावनी पहुंचे होते। गांव में रहते थे, पर क्या मजाल जो कभी टेलीविजन का नागा हो जाए।

और वही बात हुई। हम गाव पहुंचे तो पहली फुरसत मे भाई साहब मुझे एक तरफ ले जाकर कहने लगे, "अब जमीन की कोई व्यवस्था करनी होगी। तुम्हारी भाभी अब गांव नही रह सकेगी। यहां रही तो इसे हर समय बब्बल की याद तड़पाती रहेगी। कभी उसकी कोई निशानी, कभी कोई निशानी देखकर रोने बैठ जाती है। नहर तो इसे जहर लगती है। गाव नहर के किनारे है। घर नहर के किनारे है। स्कूल नहर के किनारे है। डाकखाना नहर के किनारे है। कोई नहर से कैसे भागे?"

बब्बल को मरे हुए कई दिन हो गए थे, लेकिन भाभी की आखो में आंसू अभी तक नही सूखे थे। अभी तक, आप ही आप उसकी बातें करने लगती। सबसे छोटा था, लेकिन सबसे लाडला था। बार-बार कहती, "सबसे छोटा था, लेकिन सबसे सुन्दर था।"

सबसे छोटा बच्चा, यों भी मा-बाप को बहुत प्यारा होता है। हम लोग सोचते, शायद भाभी की यंत्रणा का यह भी एक कारण था। बाकी गाव में लोगो के घने परिवार थे। बेचारी भाभी के दो ही रह गए थे। अब जबकि हम तीनो भाई गांव में इकट्ठे हुए थे, मैं सोचता, शायद भाभी को और भी अपने बब्बल की याद सता रही होगी। कितना जुल्म हुआ था। हसता खेलता बच्चा। देखते ही देखते हाथ से जाता रहा था। घर से पढने के लिए निकला था, लौटकर नही आया।

जितने मुह उतनी बातें। लोग कहते, गांव में जब से नहर आई है, हर बरस वह बलि मागती है, कभी किसी बहाने, कभी किसी बहाने। पिछले साल, किसी परदेसी ने नहर के किनारे अपनी बीवी की हत्या कर

दी थी। कहने लगा, "कमजात औरत ! मेरे साथ बसने से इनकार करती है।" उससे पिछले साल, बोरी में बंधी किसीकी लाश बहती हुई मिली थी। अभी तक यह पता नहीं चला था कि वह कौन था, उसकी किमने हत्या की थी ? उससे पहले दो पड़ोसी किसी बात पर उलझ बैठे, और एक ने कुल्हाड़ी लेकर दूसरे की गर्दन अलग कर दी और खुद नहर में डूब कर आत्महत्या कर ली।

जब से नहर आई थी, सारा इलाका हरा-भरा हो गया था। लोग एक की जगह तीन-तीन फसलें उगाते। अनाज लोगों से संभाले नहीं संभलता था। हमारी अपनी जमीन के दाम चौगुने हो गए थे। जमीदार नोटों की गड्डियां लिए हमारे भाई-भाभी के पीछे-पीछे फिरते रहते। जमीन में सब भाइयों की साझेदारी थी; इसमे वे बेचारे क्या कर सकते थे ! शहर में बस रहे हम दोनों भाई चाहे जमीन की ओर मुंह नहीं करते थे, लेकिन बाप-दादा की जद्दी जायदाद को छोड़ा भी तो नही जा सकता था।

भाभी की ओर से, हमारी चिंता अभी बनी हुई थी, कि कुछ दिनों के बाद हमने देखा कि अपने छोटे देवर के बच्चे को वह गोद में लिए फिरने लगी थी। चौके-चूल्हे का काम करते हुए बिप्पन उसकी गोद में होता। ढोर-डंगरों की देख-रेख करते हुए बिप्पन उसकी छाती से लगा रहता। अपने हाथ से उसे खिलाती, पिलाती। अपने हाथ से उसे नहलाती, धुलाती, उसके कपड़े बदलती। कुछ दिन के बाद बिप्पन ने सोना भी बड़ी ताई के साथ शुरू कर दिया था। हम सब खुश थे कि भाभी की आखों में किसी बहाने आसू तो सूखे थे।

एक के बाद एक हुए बच्चे, बिप्पन और उसकी बड़ी बहन गुड्डी अपनी मा से संभाले नहीं संभलते थे। बिप्पन का भाभी के साथ लगाव देखकर उसकी मा ने शुक्र किया। इस बार उनकी आया भी उनके साथ नहीं आई थी। दो बच्चे, मां बेचारी से संभाले नही संभलते थे।

बरस, दो बरस बाद जब हमें गाव आना होता, तो हम लम्बी छुट्टी लेकर आते ताकि जी भरकर भाई साहब और भाभी के साथ रह लें। और फिर कोई न कोई जमीन का मामला हमेशा उलझा होता। हम लोग

अपने असर-रसूख के साथ उसे निपटा लेते। इस बार तो हम लोग खास तौर पर तीन-तीन महीने की छुट्टी लेकर आए थे। कुछ पता नहीं था, शायद भाई-भाभी गाव को छोड़कर शहर चलने के लिए तैयार बैठे हों। जमीन को यों फेंकने से नुकसान हो सकता था। और इस तरह की दुर्घटना के बाद भाई साहब और भाभी का गाव में टिकना संभव नहीं लगता था।

लेकिन कुछ दिन गाव में रहने के बाद जैसे हमें अपनी आंखों पर विश्वास न हो रहा हो कि भाभी तो जैसे बिप्पन की दीवानी हो। यूं उसके साथ चिपटी रहती जैसे अपनी कोख का जाया हो। कभी बिप्पन के बाल बनाए जा रहे है तो कभी बिप्पन के रिब्बन बांधा जा रहा है। कभी बिप्पन के कपड़े धुल रहे हैं तो कभी बिप्पन के कपड़े इस्तरी हो रहे है। कभी बिप्पन के लिए कुछ पक रहा है, कभी बिप्पन के लिए कुछ तैयार हो रहा है।

धीरे-धीरे भाभी कुछ इस तरह से बिप्पन के साथ व्यस्त रहने लगी मानो बब्बल उसे भूल रहा हो। अब तो उसने उसे कभी याद भी नहीं किया था। उठती-बैठती बिप्पन की रट लगाए रखती। उन दिनों बिप्पन बीमार हो गया। नजला, जुकाम और खासी। हम सब परेशान थे। बिप्पन के माता-पिता चिंतित थे। लेकिन जिस तरह जान मारकर भाभी ने बच्चे की सेवा की, हम तो हैरान ही रह गए। सारी-सारी रात बच्चे को गोद लिए रहती। उसे कधे से लगाए टहलती रहती। क्या मजाल जो एक क्षण के लिए भी उसकी आख लग जाए।

जैसे-जैसे हमारे रवाना होने के दिन पास आ रहे थे, हमें डर लगा रहता। जब बिप्पन उसकी दुनिया से निकल जाएगा, बब्बल की याद भाभी को फिर दबोच लेगी।

और फिर वही बात हुई, अचानक बिप्पन के पिता को ड्यूटी पर बुला लिया गया। कोई जरूरी काम था, उसकी रेजिमेंट वालों ने तार भेजकर उसे काम पर हाजिर होने के लिए बुलवा भेजा। अपने मां-बाप के साथ बिप्पन को भी जाना था। मासूम-सी जान, उसे पीछे कैसे छोड़ा जा सकता था ? हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। हमें डर था

कि कहीं भाभी को फिर से दौरे न पड़ने शुरू हो जाएं। फिर उसे बब्बल की याद सताने लग जाएगी और आठों पहर उसकी आंखें बहती रहा करेंगी, जैसे जब हम गांव आए थे, हमने देखा था। छोटे भाई को उसके दफ्तर वालों ने बुलवा लिया था, उसका जाना जरूरी था। पर हमें तब कोई जल्दी नहीं थी। हमने अपनी छुट्टी और बढ़वा ली। जितने दिनों और भाई-भाभी के साथ हम रह लें, हमने सोचा, अच्छा रहेगा।

विप्पन आदि को हम बस में बिठाकर आए, तो हमने देखा कि घर लौटते हुए भाभी ने गली में खेलते हुए पड़ोसी के एक बच्चे को उंगली से लगा लिया। उससे छोटी-छोटी बातें करती हुई वह पीछे रह गई। काफी देर हो गई, हमने मुड़कर गली की ओर देखा, भाभी बेखबर, मस्त होकर बच्चों के साथ खेल रही थी, हंस रही थी, किसीकी जीत करवा रही थी, किसीको हरा रही थी। जिस बच्चे की उसने उंगली थमा रखी थी, कभी उसको गोदी में ले लेती, कभी कंधे पर चढ़ाकर लाड़ लड़ाने लगती। कहीं दोपहर ढले वह घर लौटी। घर आने पर वह पड़ोसियों का बच्चा अभी भी उसकी उंगली थामे हुए था। भाभी ने मक्खन के साथ उसे रोटी खिलाई और फिर उसे घर भेजा। जब वह जाने लगा तो उससे कहने लगी, "बोलू ! शाम को छत पर आना तुझे मैं राजा-रानी की कहानी सुनाऊंगी।" और बच्चा *'अच्छा ताई,' 'अच्छा ताई'* कहता हुआ चला गया।

वह दिन और फिर हर दिन, हम देखते, भाभी अपने फालतू समय में गांव के किसी न किसी बच्चे को उंगली से लगाकर लाड़ लड़ाती रहती, जैसे जन्म-जन्मान्तर का कोई संबंध हो। गली-मुहल्ले के बच्चे 'ताई ! ताई !' कहते उसकी राह देखते रहते। किसीके लिए उसकी मुट्ठी में कुछ होता, और किसीके लिए कुछ और। किसीके लिए उसके पास मुस-कानें होतीं, किसीके लिए लोरियां। किसीका वह गीत सुनाकर जी खुश रखती, किसीका वह कहानी सुनाकर मन बहलाती। कभी किसीको गोद में उठाए आ रही होती, कभी किसीको उंगली से लगाकर उसके घर पहुंचाने जाती।

और फिर प्रायः यों होता, जहां चार बच्चे मिलकर खेल रहे होते,

ताई उनमें जरूर होती, खेल रहे बच्चों को देख रही, खेल रहे बच्चों को खिला रही। दिन में आधी छुट्टी के समय नहर के किनारे खेल रहे बच्चे खास तौर पर 'ताई' की चिन्ता का कारण बने रहते। हमेशा बच्चों को नहर की ओर जाने से रोकती। इस तरह की दुर्घटनाएं कोई हर रोज थोड़े ही होती है ! जो कोई भी ताई की परेशानी को देखता, उसे समझाता। पर ताई अपनी धुन की पक्की थी। जब फ़ुरसत होती, अगर बच्चों को नहर की ओर खेलते देखती, तो नहर के किनारे जाकर खड़ी हो जाती।

और फिर एक दिन वही बात हुई। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नही हो रहा था। हू-ब-हू वैसे ही जैसे उसका बब्बल दौड़ता हुआ नहर पर आ निकला था; हू-ब-हू वैसे ही जैसे उसके पीछे कोई बच्चा भागा था, दो बच्चे दौड़ते हुए आए; सरपट, बेतहाशा; न वे आगे देख रहे थे न पीछे; एक होड़ लगी थी। पिछला बच्चा अगले बच्चे से आगे निकलने की कोशिश में, और अगला बच्चा, दूसरे को दौड़ में हराने की ललक में; और भाभी के देखते-देखते वह बच्चा धड़ाम से नहर में जा गिरा। भाभी ने आगे देखा न पीछे, और वैसी की वैसी वह नहर में कूद गई। और आंख झपकने की देरी में वह बच्चे को पकड़कर किनारे पर ले आई।

"मेरा बब्बल, मेरा बब्बल।" नहर के पानी से तर-ब-तर बच्चे को जब वह बाहों में भरकर ला रही थी, बार-बार वह बोल उसके होंठों पर मचल रहे थे।

जिसने मेरे दिल को छुआ

"सर, कोई डाक्टर शैलजा है, हैदराबाद से।" इंटरकाम पर मेरी पी० ए० थी।

"डाक्टर शैलजा ?" मैं तो किसी डाक्टर शैलजा को नहीं जानता था।

"जी, हैदराबाद से आई हैं। मुलाकात के लिए वक्त मांगा है।"

"क्या काम है ?"

"काम तो नहीं बताया है, लेकिन कहती है, आपको अच्छी तरह से जानती हैं।"

उन दिनों मैं बहुत व्यस्त था। दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार हो रहा था। ज्योंही मुझे उससे फुरसत मिलती, मैं जल्दी-जल्दी दफ्तर आकर जरूरी काम निपटा लेता। जिन फाइलों पर तुरन्त निर्णय देना होता, उन्हें देखता और फिर जाकर सेमिनार की कार्यवाही में शामिल हो जाता।

"यों करो, उनसे पूछो, दो दिन रुक सकती हैं ? मैं सेमिनार से फारिग हो जाऊं।" मैंने अपनी पी० ए० को समझाया। इसका मतलब यह भी था कि अगर संभव हो तो मुलाकात को टाल दिया जाए।

मैंने फिर अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर डाला। मैं किसी डाक्टर शैलजा को नहीं जानता था। कोई होगी। हम लोग हैदराबाद तीन साल रहकर आए थे। हमारे कई मित्र बने थे, कई लोगों से हमारी जान-पहचान हुई थी। हैदराबाद का वास, हमारे जीवन के सुन्दर क्षणों में से था।

अगली बार जब मैं फिर दफ्तर आया, मेरी पी० ए० ने बताया,

"जी वह तो जरूर ही मिलना चाहती हैं, उन्हें वापस जाना है। कोई डाक्टर शैलजा मलिक है। मैंने उन्हें लंच से पहले दस मिनट के लिए बुला लिया है।"

मैं खामोश था। पी० ए० ने अपनी समझ के अनुसार फैसला कर लिया था, सो ठीक था। पी० ए० को मालूम था कि मैं लच के लिए दफ्तर जरूर आता हूं। जल्दी-जल्दी लंच लेकर, दफ्तर का काम निपटा-कर, बाद दोपहर फिर सेमिनार मे शामिल हो जाता हूं।

"क्यों, टल नही सकी यह मुलाकात?" मैंने फिर पूछा।

"जी नही, वह तो बहुत जिद कर रही है। यों लगता है, आपको बहुत अच्छी तरह जानती हैं।"

एक नजर देखकर, मुझे मिसेज मलिक की याद आ गई। हमारे यहां कभी-कभी आया करती थी। मुझे नही मालूम था कि उसका नाम शैलजा था। हम तो उसे मिसेज मलिक कहकर बुलाते थे। किसी लड़कियों के कालेज मे पढाती थी।

"और जनाब! वह डाक्टर कब से बन गई?" मैंने अपनी शर्मिन्दगी को छिपाने की कोशिश की। मैं उसे पहचान जो नहीं सका था।

"मुझे पी-एच० डी० किए अब कई साल हो गए हैं।" डाक्टर मलिक ने हंसते हुए कहा, "उनके गुजर जाने के बाद मैंने सोचा कि अब डाक्ट्रेट कर लेनी चाहिए। जिम्मेदारिया......।"

मुझे याद आया, कुछ वर्ष पहले, हैदराबाद के हमारे एक मित्र ने बताया था कि मिस्टर मलिक की एक सडक-दुर्घटना में मौत हो गई थी।

"जिम्मेदारियां सिर पर आन पड़ी तो मैंने सोचा कि शैलजा अब हार नही मानेगी। दो साल लगे और मैंने डाक्ट्रेट कर ली।"

"हद हो गई। यह तो आपने कमाल कर दिखाया।" मैंने देखा, मिसेज मलिक और की और हो गई थी। इस तरह तो पहले कभी नहीं हुआ करती थी। जहां तक मुझे याद आ रहा था, एक साधारण-सी घरेलू औरत होती थी। बीच-बीच मे सफेद बाल। अब तो उसने बालों को बड़े सलीके से रंगा हुआ था। अपने घने बालों से उसने प्यारा-सा

जूड़ा बनाया हुआ था। एक से अधिक बार वह उसकी नुमायश कर चुकी थी। एक बार मुड़कर दाईं ओर दीवार पर टंगी तस्वीर की प्रशंसा करने लगी। फिर कुछ देर बाद बाईं ओर खिड़की से बाहर किसी शोर से चौंककर उस ओर देखने लगी। बालों को बल देकर तिलगनों की तरह उसने गांठ लगाई हुई थी, और बाकी बाल खुले के खुले लटक रहे थे। जूड़े का यह अंदाज मुझपर हमेशा जादू का असर रखता रहा है।

"यह बताइए, घर में ·····"

"बस, सुर्खरू हो गई हूं। बेटी की शादी हो गई है। बेटा मिलिट्री अकादमी में दाखिल हो गया है।"

"पढ़ भी जाएगा, नौकरी भी मिल जाएगी।" मैंने कहा।

"ईश्वर ने सब काम कर दिए हैं। अब मैं आजाद हूं। अगर मेरी मर्जी होती तो मैं कालेज की प्रिंसिपल बन सकती थी, लेकिन मैंने सोचा, काहे को कोई नई जिम्मेदारियां सिर पर लूं। अब मैं निश्चिन्त हूं। न कोई फिक्र, न कोई फाका। अपने पीरियड पढ़ाए और निवृत्त।"

"कालेज की नौकरी में छुट्टियां बहुत होती हैं।" मेरे मुंह में पानी आ रहा था। कभी मैंने स्वयं कालेज में पढ़ाया था। कालेज की नौकरी छोड़कर सारी उम्र पछताया।

और फिर हमने हैदराबाद की कहानियां शुरू कर दीं। चारमीनार की रौनक, बागे-आमा की बहार, हुसैन सागर और फलक जुमा। सालार जंग म्यूजियम और उस्मानिया विश्वविद्यालय।

"हैदराबाद की सबसे खूबसूरत चीज वहां की तिलंगनें हैं।" अचानक मेरे मुंह से निकला।

और मेरी मुलाकातिन ने आंखें भरकर मेरी आंखों में देखा, जैसे किसी बाज ने झपटकर किसी पक्षी को दबोच लिया हो। मिसेज मलिक का मेकअप, उसका रंग-रूप, उसके बालों का ढंग एक अत्यन्त सुन्दर तिलंगन का था। उसकी आंखों में एक मादकता थी। एक फबन उसके अंग-अंग में लहराने लगी।

अधेड़ उम्र की औरत जब सुन्दर लगना चाहे तो एक अजीब आकर्षण उसमें आ जाता है।

मैं सिर से लेकर पाव तक कांप गया। और फिर एकदम संभलते हुए मैंने मतलब की बात करनी चाही। इतने मे मेरी पी० ए० ने कमरे में काफी भेज दी।

"काफी मैं बनाती हूं।" मिसेज मलिक ने काफी की ट्रे अपनी ओर सरका ली। "लिलंगनो जैसी काफी कोई नही बना सकता," कहते हुए उसने मेरी ओर अर्थपूर्ण नजरो से देखा।

"जिन्दगी शहद की कटोरी है जवानी में—आपका एक शेर है न।" मिसेज मलिक मुस्करा रही थी।

"मेरी कोई पुरानी कविता है।"

"कविता कभी पुरानी नही होती। औरत कभी···" और फिर वह ऊंचा-ऊंचा हंसने लगी।

"मेरे किसी नाटक में एक पात्र कहता है, औरत कभी बूढी नहीं होती।"

यों गप-शप में हमें लगे देखकर, मेरी पी० ए० ने कुछ सैण्डविच भी भीतर भिजवा दिए थे ताकि मुझे लंच की जरूरत न रहे। यू लगता था कि यह मुलाकातन जल्दी जाने वाली नही थी। फिर अचानक मैं खामोश हो गया ताकि जिस मतलब के लिए मिसेज मलिक आई थी, वह बात कर ले। लेकिन वह तो और ही कहानियां लेकर बैठ गई।

"मेरे घरवाले की अचानक मौत पर बेशुमार चिट्ठिया आई, लेकिन जिस चिट्ठी ने मेरे दिल को सबसे ज्यादा छुआ, वह आपकी थी।"

और मुझे याद तक नही था कि मैंने क्या लिखा था। मुझे बस इतना ही ध्यान था कि किसी हैदराबादी के मुझे बताने पर कि मिस्टर मलिक की सड़क-दुर्घटना मे मौत हो गई है, उस दिन की डाक के उत्तर देते हुए मैंने अपनी पी० ए० को मिसेज मलिक के नाम एक औपचारिक चिट्ठी लिखवाई थी।

"आप यों खाली-खाली नजरो से मेरी ओर देख रहे हैं, जैसे आपको याद भी न हो कि आपने मुझे चिट्ठी लिखी भी थी या कि नही?" मिसेज मलिक अत्यन्त सूक्ष्मग्राही हो उठी थी।

"नही, नही, यह बात तो नही।" मैंने खिसियाना-सा होकर कहा।

"अच्छा बताइए, आपने क्या लिखा था ?" मिसेज मलिक ने अत्यन्त भावनापूर्ण अंदाज से मेरी ओर देखकर पूछा।

"मैं दिन में बीसियों चिट्ठियां लिखता हूं···" मेरे मुख से यह निकला ही था कि मैंने देखा कि मिसेज मलिक का चेहरा जैसे एकदम बुझ गया हो।

"याद क्यों नहीं ? कोई अपने दोस्तों को लिखी चिट्ठी भी भूल सकता है ?" मैंने संभलते हुए झूठ बोलने की कोशिश की। यह सुनकर मिसेज मलिक एकदम खिल-सी गई।

"इतने दिन···इतने दिन हो गए हैं, लेकिन मुझे एक क्षण के लिए भी आपकी चिट्ठी के शब्द नहीं भूले···मैं आपके पति से कभी मिला नहीं हूं, लेकिन आपके हुस्ने-जौक से मुझे यकीन है कि जरूर वह कोई दिलचस्प व्यक्ति होंगे। हुस्ने-जौक कितना खूबसूरत लफ्ज है उर्दू का।" और मिसेज मलिक मेरी ओर एकटक देखे जा रही थी।

"तुम हैदराबादी के दीवाने हो।"

मैं मिसेज मलिक की ओर देख रहा था। काफी पीते हुए वह बहुत आकर्षक लग रही थी। हर घूंट भरने से पहले उसके गालों में गड्ढे बन-बन जाते थे।

मैंने आंख बचाकर सामने दीवार पर लगी घड़ी की ओर देखा जैसे मिसेज मलिक ने मुझे पकड़ लिया हो। "मुझे मालूम है, आपको सेमिनार के लिए जाना है। अभी वक्त है। आप मुझे रास्ते में उतारते जाइएगा।" और वह आराम से बैठ गई। वह काफी पी रही थी। सलीके से सैंडविच खा रही थी ताकि उसकी लिपस्टिक खराब न हो जाए।

वह दिल्ली के इतने महंगे होटल में ठहरी हुई थी। जब मैं उसे उतार रहा था, मुझे चकित-सा देखकर कहने लगी, "मैंने इस होटल में कमरा रिजर्व करवाया है क्योंकि यह आपके दफ्तर के नजदीक है।"

"अच्छा।" मैंने ऐसे कहा जैसे मुझे जल्दी हो।

"अभी सेमिनार शुरू होने में बीस मिनट हैं। कुछ देर के लिए आइए और मेरा कमरा ही देख लीजिए। और···।"

"नहीं मिसेज मलिक। मुझे जल्दी है।" मैंने अपनी गाड़ी के इंजन को जान-बूझकर चलता रहने दिया था।

"यह आप मुझे 'मिसेज मलिक', 'मिसेज मलिक' क्या कहते रहते हैं। मेरा नाम शैलजा है।"

"हां, हां...माफ करना । शैल..." और मैंने जल्दी-जल्दी गाड़ी चला-दी।

"सेमिनार के बाद शाम को आइएगा।" मिसेज मलिक ने आवाज देकर कहा, "नहीं, तो कल दफ्तर में मुलाकात होगी।" फिर जैसे आप ही उसने फैसला करके मेरी ओर हाथ हिलाना शुरू कर दिया।

पसीना-पसीना-सा हुआ मैं होटल की ड्राइव से गाडी बाहर निकाल-कर ले आया।

सेमिनार मे बैठे हुए, मुझे अजीब-अजीब-सा लग रहा था। 'आपका हुस्ने जौक' यह मैं उसे क्या लिख बैठा था। अपनी बेहूदा हरकत पर मुझे बार-बार खीझ आ रही थी।

अगले दिन लंच के समय जब मैं सेमिनार से दफ्तर पहुंचा ही था कि चपरासी ने आकर मेरे सामने एक चिट रखी—'शैलजा' उर्दू मे उस पर लिखा हुआ था। मैंने झुककर देखा, चिक के बाहर वह खड़ी थी। तिलंगन वाली गहरी नीली साडी, कलेजी रंग की किनारी, बालों को ऊपर करके अजंता स्टाइल का जूडा, कानों में झम-झम कर रही बालियां, गालो पर एक ओर काजल से बना हुआ तिल, मुख्तसर-सी अंगिया......

चपरासी बाहर निकला और वह चिक उठाकर अन्दर आ रही थी। "मैं हाजिर हो सकती हू ?" खुशबू-खुशबू। वह मेरे कमरे में थी।

"हां, शैल..." जैसे बाकी के शब्द मेरे गले मे अटककर रह गए हों।

नत्थासिंह मर गया

बाबू नत्थासिंह चौंक उठा। दफ्तर में बैठा काम कर रहा था कि किसीने आकर कहा—"नत्थासिंह मर गया है!" उसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। जैसे किसीने गोता खाया हो। उसे लगा, जैसे वह औंधे मुंह परे जा गिरा हो। लेकिन अगले ही क्षण वह संभल गया। वह तो भला-चंगा था। अपने दफ्तर के बरामदे के एक कोने में टूटी हुई कुर्सी पर बैठा, बाहर से आई हुई डाक को डायरी कर रहा था। यह काम खत्म होगा तो अपने दफ्तर से बाहर जा रही डाक को रिजस्टर में चढ़ाना शुरू कर देगा। हर रोज उसे यही करना होता था। जब तक सारी डाक रजिस्टर में नहीं चढ़ जाती थी, उसे छुट्टी नहीं होती थी। और अफसरों को यह मार थी कि जैसे-जैसे दफ्तर बन्द होने का समय आता, वैसे-वैसे वे चिट्ठियों पर दस्तखत करना शुरू करते। प्रायः नत्थासिंह की दफ्तर में ही शाम हो जाती : 'कलकत्ता दफ्तर' की नौकरी बुरी!

सिर झुकाए, काम में व्यस्त, कभी-कभी वह आपमे-आप मुस्करा देता। वैसे उसका दिल बैठ गया था। वह सिर से पांव तक पसीना-पसीना हो गया था। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। जैसे अचानक किसीको ठोकर लगे और वह अंधे कुएं में जा गिरे।

उनके मुहल्ले में बाबा नत्थासिंह कितने दिनों से बीमार पड़ा था। घड़ी-पल का मेहमान था। लेकिन बेचारे की जान नहीं निकल रही थी। लकवे का मारा, लाचार, हिल-डुल नहीं सकता था। पर वाले सेवा करते-करते हार थके थे। डाक्टर-हकीम कब के जवाब दे चुके थे। लेकिन प्राण थे कि निकल नहीं रहे थे। उसे तो मरना ही था।

तभी बाबू नत्थासिंह से किसीने आकर कहा, "नहीं! बूढ़ा नत्थासिंह

नही मरा।" यो ही झूठी अफवाह थी। किसी सिरफिरे ने यो ही उड़ा दी थी।

उनकी गली का बूढा नत्थासिह भी नही मरा था। तो भी जब उसे इस बात का ध्यान आता, किसीका उसे आकर यह बताना कि नत्थासिह मर गया है, तो उसे चक्कर-चक्कर आने लगा था, जैसे दिल की कोई धड़कन रुक गई हो।

सिर झुकाए, दफ्तर की डाक चढाते-चढ़ाते अंधेरा होने लगा। बाकी का अमला कब से छुट्टी कर गया था। और अब भी कहां उसकी जान छूट रही थी! अभी तो चिट्ठियों का ढेर मेज पर पडा था—रजिस्टर पर चढ़ाने के लिए। बड़े साहब का हुक्म था कि डाक बाबू हर रोज अपना मेज खाली करके जाए। कोई चिट्ठी अगले दिन के लिए न छोड़ी जाए। और नत्थासिह, सिर झुकाए, जल्दी-जल्दी हाथ चला रहा था। बरामदे में बाहर बैठा चपरासी चिक उठाकर बार-बार अन्दर झांक लेता। कब नत्थासिह की मेज खाली हो और कब वह चिट्ठियो को थैले में डालकर बड़े डाकखाने छोडने जाए।

शाम का अंधेरा जैसे-जैसे बढ रहा था, नत्थासिह को यों लगता जैसे अंधेरे की चादर मे वह लिपटा जा रहा हो। लेकिन वह बत्ती क्यों नही जला लेता? बत्ती का बटन उसके सिर पर था। नही, इसकी जरूरत नही थी। और कुछ क्षण, और वह अपना काम खत्म कर लेगा। नही तो कुछ चिट्ठिया वह दराज मे रख जाएगा। इस समय देख भी कौन रहा है?

और नत्थासिह को यों लगा, जैसे कदम-कदम बढ रहे शाम के अंधेरे में से किसीने झपटकर उसके गले को आ दबोचा है। उसकी सास रुक गई। उसे अचानक किसीके विलाप करने की आवाज सुनाई दी। यह तो उसकी पत्नी थी। उसके अपने बच्चे चीख रहे थे। नत्थासिह फिर पसीना-पसीना हो गया।

बाकी बची चिट्ठियों को सचमुच उसने किसी न किसी तरह मेज की दराजों में ठूस दिया और आप छुट्टी करके घर को चल दिया।

साइकिल के पैडल पर पाव रखा ही था कि उसे ध्यान आया कि गाव पहुंचते ही उनकी गली में कुहराम मचा होगा। लेकिन बाबा नत्थासिह

तो मरा नहीं था। यू ही किसीने वेपर की उड़ा दी थी।

लेकिन फिर भी वार-वार उसके कानों में यह आवाज गूजने लगती —'नत्थासिंह मर गया है।' जब भी इसका उसे खयाल आता, उसे लगता जैसे उसकी छाती मे वम आ फटा हो। उसके पसीने छूटने लगते।

बाबू नत्थासिंह सोचता—शायद इसलिए कि चारपाई पर पड़ा, किसी घड़ी का मेहमान बाबा नत्थासिंह उनके मुहल्ले मे रहता था। उनका पडौसी था। और तो और, उसके बाप का नाम भी गुरुदित्तसिंह था—कलकत्ता दफ्तर के बाबू नत्थासिंह वल्द गुरुदित्तसिंह की तरह।

और उसे लगा जैसे कोई उसका पीछा कर रहा हो। उसे किसीकी परछाईं-सी नजर आई। नही, इस समय तो सड़क सुनसान थी। गोधूलि के समय, सड़क के किनारे पेड़ों की परछाइया बढ़-बढ़कर कभी की रुक गई थी। शहर से कोई तीन कोस दूर था उनका गाव। सडक पक्की थी। पक्की ही समझो। कच्ची तो नही थी। चाहे ठेकेदार ने पैसे खा लिए थे। यों ही कंकर विछाकर ऊपर रोलर फिरवा दिया था। वारक मास्टरी के अफसरों के साथ मिलकर सरकार का सिर मूड लिया था।

हैं! नही, नहीं, यों ही उसका यह वहम था। नत्थासिंह को लगा जैसे आकाश मे से किसीने झपट्टा मार, उसे गर्दन से आ पकड़ा हो। उसका दम घुट रहा था। अचानक उसकी साइकिल डगमगा गई। यह तो ईश्वर का शुक्र था, सड़क पर इस समय यातायात नही था। टक्कर हो जाती, जरूर टक्कर हो जाती। जिस तरह उसकी साइकिल बायें से दायें घूम गई थी, टक्कर तो हो ही जाती।

बाबा नत्थासिंह नही मरा था तो फिर उसे आसपास यों उदासी-सी छाई हुई क्यों लग रही थी? उसके कानों में बार-बार किसीका विलाप क्यों सुनाई देने लगता था? बच्चे चीख रहे थे। और यह रोना-धोना उसकी पत्नी का था। यह चीख-पुकार उसके बच्चों की थी।

बेशक बाबा नत्थासिंह उनकी गली मे रहता था। बेशक बाबा नत्थासिंह उनका पड़ौसी था। बेशक बाबा नत्थासिंह के बाप का नाम भी गुरुदित्तसिंह था। बेशक बाबा नत्थासिंह को वह ताऊ कहकर पुकारता था। लेकिन उनकी रिश्तेदारी तो कोई नही थी। अगर वह मर भी गया

था, तो इस उम्र में उसकी मौत पर कौन रोएगा ! उसके घरवाले तो कब से तग आ चुके थे। श्मशान-भूमि मे जब उसे जलाकर लौटेंगे तो उसके परिवार वाले अपने-आपको सुर्खरू महसूस करेंगे। जो बोलेगा यही कहेगा—भला आदमी था, अच्छा हुआ बेचारे का क्लेश कट गया। भोगा भी तो उसने कितना है! सैकड़ों रुपये उसके इलाज पर लग गए। लेकिन कहते है कि 'बढी के लाख उपाय और घटी का कोई इलाज नहीं'। पूतों, पोतों, बेटियों, नवासियों वाला होकर मरा है। इस तरह की मौत हर कोई मरे। हमेशा कहा करता था, 'मैं मरूं तो शनिश्चर की शाम को मरूं ताकि अगले दिन इतवार की छुट्टी हो। मेरे संस्कार मे जाने के लिए, गाव वालो को अपने काम से छुट्टी न लेनी पड़े।' खुद ही तो उसने गांव वालो को सरकारी नौकरी मे भरती करवाया था। उसे मालूम था कि फिरंगी को हिन्दुस्तानियों का बात-बात पर छुट्टी लेना पसन्द नही था।

और फिर नत्थासिंह को खयाल आया कि आज शनिवार की शाम है। और पता नहीं, क्या हुआ, कैसे हुआ, अंधेरा-अंधेरा, चक्कर-चक्कर, अगले क्षण उसकी साइकिल सामने सड़क पर रीं-री, ठक···ठक एक बैलगाड़ी मे जा लगी। और लुढ़ककर वह सड़क से कच्चे पर हो गई। हैंडल उसके हाथ से छूट गया। और नत्थासिंह औंधे मुह, सड़क के बायीं ओर खड्डे मे जा गिरा। पुल के पास खड्डा गहरा था। बैलगाडी वाले ने मुड़कर देखा, यह तो बाबू नत्थासिंह था। लेकिन उसके देखते-देखते वह एक गेंद की तरह कई गज नीचे खड्डे मे जा गिरा था। उसकी साइकिल सूखी टहनी की तरह सड़क के किनारे औंधी पड़ी थी।

फत्तू बैलगाड़ी रोककर जल्दी से गड्ढे में उतर गया। लेकिन इससे पहले कि वह वहा पहुचे, बाबू नत्थासिंह खत्म हो चुका था। पत्थर का पत्थर पड़ा था। फत्तू ने देखा, उसकी नब्ज रुक गई थी। सास नहीं चल रही थी। और फिर किसी न किसी तरह उठाकर उसने नत्थासिंह को अपनी बैलगाडी मे ला डाला। और गाव की ओर चल दिया।

नत्थासिंह की इस बेवक्त मौत पर गाव में चीत्कार मच गया। उसकी पत्नी ने छाती पीट-पीटकर बुरा हाल कर लिया था। अडोस-पड़ोस वाले, गांव के लोग, जो कोई भी सुनता, भागा हुआ नत्थासिंह के घर की ओर आ

रहा था। कोई आंख रूखी नहीं थी ! हर किसीकी सिसकियां निकल-निकल जाती। सामने बरामदे के फर्श पर पड़ी उसकी लाश को देखकर लोग बिलख उठते। सारा गांव उनके घर इकट्ठा हो गया था।

यों कुहराम मचा हुआ था कि अचानक नत्थासिंह ने आंख खोल दी। आगे-पीछे खड़े लोग हक्का-बक्का रह गए। उसकी पत्नी लपककर उसके गले जा लगी। उसके बच्चे अपने बाप से चिपट गए।

हर किसीकी जान में जैसे जान आ गई हो। चारों ओर खामोशी छा गई। इतने में पड़ोस में बाबा नत्थासिंह के आंगन में चीख सुनाई दी। बूढ़ा नत्थासिंह, जो इतने दिनों से चारपाई पर पड़ा एड़ियां रगड़ रहा था, चल बसा था।

अगले दिन बाबा नत्थासिंह का दाह-संस्कार करके जब लोग लौटे तो यह कहानी हर किसीकी जबान पर थी :

"भला-चंगा अपने दफ्तर में काम करके लौट रहा था कि कलकत्ता दफ्तर का बाबू नत्थासिंह सड़क के हादसे में मर गया। लेकिन जब उसे धर्मराज के सामने पेश किया गया तो धर्मराज ने यमदूतों से कहा, 'यह तो तुम गलत नत्थासिंह को ले आए हो, बाबू नत्थासिंह नहीं, बाबा नत्थासिंह।' और उसने उसे वापस लौटा दिया। धर्मराज का यह कहना ही था कि बाबू नत्थासिंह जी उठा और बूढ़ा नत्थासिंह चल बसा।"

यह कहानी कितने दिन गांव में हर किसीकी जबान पर रही। नत्थासिंह के दफ्तर भी जा पहुंची। नत्थासिंह सुनता और बिट-बिट लोगों के मुंह की ओर देखने लगता।

-

हाथ की सफाई

आज फिर भाई साहब और भाभी में तू-तू, मैं-मैं हो रही थी। आज की झड़प कुछ अधिक गंभीर प्रतीत होती थी। शाम को जब भाई साहब काम से लौटे तो उनके कमरे में से ऊंचा-ऊंचा बोलने की आवाज आई। फिर भाभी ने भी गरजना शुरू कर दिया और अब अंधेरा होने लगा था। शाम के भोजन का समय हो गया था।

और हम सब बच्चे एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे। मुझे भाई साहब और भाभी में खटपट की कभी समझ नहीं आई थी। भाभी बेशक मुंहजोर थीं, लेकिन भाई साहब तो देवतास्वरूप थे। अपने काम से काम, न किसीसे लेना न किसीको देना।

और दीदी कहती, आज के झगड़े में कसूर भाई साहब का था। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था और मैं उसके मुंह की ओर देखने लगा। भाई साहब के विरुद्ध जैसे मेरे कान कुछ सुनने के लिए तैयार न हों। उनमें मुझे कभी कोई बुराई नजर नहीं आई थी।

हमारे घर का आंगन बहुत खुला है, चाहे कोई उसमें कबड्डी खेल ले। आंख-मिचौनी तो अक्सर हम खेला करते थे। कभी कोई किसी कमरे में जा छिपता, कभी किसीमें। अपनी मृत्यु के समय हमारे पिता जी ने यह वसीयत की थी कि हम सब एक मुट्ठी होकर रहें। उनके पश्चात् उनकी इस इच्छा पर फूल चढ़ाए जा रहे थे। पिता जी नहीं रहे, माता जी उनसे पहले ही ईश्वर को प्यारी हो गयी थीं, हम बच्चों की देखभाल के लिए बस भाई साहब थे, भाई साहब और भाभी।

और आज हमारे घर के विशाल आंगन के गिर्द हर कमरे में इस बात की प्रतीक्षा हो रही थी कि कब भाई साहब और भाभी अपना झगड़ा

खत्म करें और नौकर खाना खिलाकर छुट्टी पाए।

झगड़े की जड़ भाभी का भाई था। लड़का आवारा निकला था। पढ़ने के समय वह पढ़ा नहीं और अब काम में उसका मन नहीं लगता था। छोटा-मोटा काम उसे पसन्द नहीं आता था। बस, यही कहता, 'मैं तो टैक्सी चलाऊंगा। मुझे कोई मोटर कार खरीद दो।' अब उसकी यह इच्छा कौन पूरी करे! बस, एक बहन ही थी जिसके पास चार पैसे थे।

भाभी भी सच्ची थी। आखिर एक ही एक उसका भाई था। बहन-भाई ही एक-दूसरे की मदद करते है। जीवन की दौड में कोई आगे निकल जाता है, कोई पीछे। जो पिछड जाते है उनकी मदद तो होनी ही चाहिए।

भाभी की मर्जी थी कि जीजा अपने साले के लिए मोटर कार खरीद दें। "जवान लड़का है, हौले-हौले पैसे लौटा देगा। कर्ज देने मे क्या हर्ज है, दान थोड़े मांग रहा है!" भाभी उठते-बैठते आपसे-आप बोलती रहती।

उधर भाई साहब भी सच्चे थे। उन्होने साले साहब को अपने साथ काम पर लगाकर देख लिया। लडका एक तो पढ़ा-लिखा नही था, दूसरा बदतमीज था। न बड़े का लिहाज, न छोटे का। ऐसे आदमी को कौन मुंह लगाएगा!

कितने दिन इसी समस्या को लेकर झगड़ा खडा हो जाता। भाभी अपने इकलौते भाई की मदद करना चाहती है। भाई साहब यह सुनने के लिए तैयार नही थे। और हर दूसरे रोज भाभी और भाई साहब मे बदमगजी हो जाती। भाभी को न खाना अच्छा लगता, न पीना। उसका भाई बेकार झख मार रहा था। काम नही करेगा तो कल उसका विवाह कैसे होगा! भाभी को बस यही चिंता खाए जा रही थी। काम नही करेगा तो खायेगा कहा से! और किसीके लिए कुछ न करे पर अपना पेट तो उसे पालना ही था।

कई महीनों की झिक-झिक के बाद भाई साहब इस बात के लिए राजी हो गए कि वे थ्री-व्हीलर स्कूटर की रकम दे देंगे। रकम उधार होगी, जिसे किस्तों मे लौटाना होगा।

भाभी मान गई। लड़का भी तैयार हो गया। भाई साहब कहते,

"अगर लड़का सयाना है तो मेहनत करे, स्कूटर चलाकर पैसे कमाए और फिर अपनी कमाई से मोटर कार खरीद ले। उसे कौन रोक सकता है!"

भाई साहब ने चेक काटकर दिया और घर में शान्ति हो गई।

फैसला यह हुआ था कि स्कूटर खरीदकर लड़का स्वयं स्कूटर चलाएगा और हर महीने अपनी कमाई की आधी रकम अपने जीजा के कर्ज के खाते में लौटाया करेगा।

लड़के ने थ्री-व्हीलर स्कूटर खरीद लिया। उसके पीछे शान से लिखवाया, 'कुन्दन दी गड्डी'। सारा दिन लट्टू की तरह स्कूटर को घुमाया करता। लेकिन एक महीना गुजर गया, दो महीने गुजर गए, तीन महीने गुजर गए और उसने अपने जीजा की कानी कौड़ी वापस नहीं की। जब भी बहन को मिलने आता, कोई न कोई बहाना करके चला जाता। कभी कहता, 'आजकल मंदे के दिन हैं,' कभी कहता, 'स्कूटर ठीक नहीं चल रहा है।' कभी कुछ, कभी कुछ।

यों प्रतीत होता था कि स्कूटर की कमाई इतनी नहीं थी कि कुन्दन अपने पेट भी पाले और पैसे बचाकर अपने जीजा का कर्ज भी उतारे। और इधर भाई साहब बेसब्र होने लगे। और फिर हमारे घर में एक तनाव-सा रहने लगा। भाई साहब पैसे का तकाजा करते थे और भाभी टालते हुए थक गई थी। पिछले कई दिनों से उसके भाई ने उसे मिलना भी बंद कर दिया था। भाभी सोचती, एक तो पल्ले से रकम दी और दूसरा अपने भाई को भी गवा दिया।

भाई साहब को इन चिकनी-चुपड़ी बातों से कोई वास्ता नहीं था। इतने दिन वे उनका मुंह देख चुके थे। अब वे कहते, या तो कुन्दन उनकी रकम चुकाए या वह उसका स्कूटर छीनकर बेच डालेंगे। और यों अपनी उधार दी हुई रकम का कुछ न कुछ हिस्सा उन्हें मिल जाएगा।

भाभी सुनती और उसे चारों कपड़े आग लग जाती। उठते-बैठते वह बड़बड़ाती रहती। कभी अपने भाई पर, कभी अपने घरवाले पर खफा होती रहती। ज्यादा शिकायत उसे अपने मर्द से थी। क्या हुआ जो चार दिन उसकी रकम रुक गई थी। लड़का कोई इन्कार थोड़े ही करता था। आज नहीं तो कल, दूध-से धोकर पैसा लौटा देगा।

भाई साहब को इन बातों में कोई विश्वास नहीं था। उनके सब्र का प्याला छलकने लगता और वे भाभी पर नाराज होने लगते।

कई महीने यों बदमगजी होती रही। भाई साहब और भाभी तो परेशान थे ही, हम बाकी घरवाले भी बहुत तंग आ गए थे।

और फिर अचानक कुन्दन ने अपना कर्ज उतारना शुरू कर दिया। हर हफ्ते आता और कुछ न कुछ रुपये अपनी बहन के हवाले कर जाता। कभी ज्यादा, कभी कम। हम सब खुश थे। कुन्दन का काम चल निकला था।

और फिर एक बार जब कुन्दन अपनी बहन को पैसे देने आया, आंगन में बैठा, वह हमे अपने पेशे की कहानिया सुनाने लगा। हम लोग उससे पूछ रहे थे, आखिर उसकी कमाई एकदम कैसे हो गई थी कि उसने अपना कर्ज उतारना शुरू कर दिया। हम देख रहे थे, कुन्दन आजकल अच्छा खाता था, अच्छा पहनता था। जब भी आता, पान की गिलौरी उसके गालो में होती। कभी किसी रंग की बुश्शर्ट, कभी किसी रंग की। चमचमाते बूट।

"असल मे जादू इसका है।" कुन्दन हंसता हुआ हमें एक सुआ दिखा रहा था। यह सुआ उसने अपने दायें कान के पीछे पगड़ी मे छिपाया हुआ था। हम लोग हैरान होकर उसके मुह की ओर देख रहे थे। एक बेहद चालाकी से वह सूए को कानों के पीछे पगड़ी मे छिपा देता और फिर वैसी ही फुर्ती से उसे खीचकर बाहर निकाल देता।

हमारी समझ में अभी तक कुछ नही आ रहा था।

और फिर कुन्दन हमें बाहर सड़क पर खड़े अपने स्कूटर के पास ले गया। स्कूटर को वह स्कूटर थोड़े कहता था! स्कूटर को वह 'कुन्दन दी गड्डी' कहता था। धुली हुई, पालिश से चमचमा रही। कुन्दन ने हमारे सब्र को और आजमाए बगैर हमें बताया :

"समझ लो आप मेरी सवारिया है। यहा पहुंचकर आप कहेंगी, 'भाई स्कूटर वाले, हम कोठी के अंदर होकर अभी आते हैं। तुम जरा रुकना।' और फिर आप लोग अपने मिलने वालों के पास चले जाते है। उधर आपकी मेरी तरफ पीठ हुई और इधर मैं अपने सूए के साथ जादू

"अगर लड़का सयाना है तो मेहनत करे, स्कूटर चलाकर पैसे कमाए और फिर अपनी कमाई से मोटर कार खरीद ले। उसे कौन रोक सकता है!"

भाई साहब ने चेक काटकर दिया और घर मे शान्ति हो गई।

फैसला यह हुआ था कि स्कूटर खरीदकर लड़का स्वयं स्कूटर चलाएगा और हर महीने अपनी कमाई की आधी रकम अपने जीजा के कर्ज के खाते में लौटाया करेगा।

लड़के ने थ्री-व्हीलर स्कूटर खरीद लिया। उसके पीछे शान से लिखवाया, 'कुन्दन दी गड्डी'। सारा दिन लट्टू की तरह स्कूटर को घुमाया करता। लेकिन एक महीना गुजर गया, दो महीने गुजर गए, तीन महीने गुजर गए और उसने अपने जीजा की कानी कौड़ी वापस नहीं की। जब भी बहन को मिलने आता, कोई न कोई बहाना करके चला जाता। कभी कहता, 'आजकल मंदे के दिन है,' कभी कहता, 'स्कूटर ठीक नही चल रहा है।' कभी कुछ, कभी कुछ।

यों प्रतीत होता था कि स्कूटर की कमाई इतनी नहीं थी कि कुन्दन अपने पेट भी पाले और पैसे बचाकर अपने जीजा का कर्ज भी उतारे। और इधर भाई साहब बेसब्र होने लगे। और फिर हमारे घर मे एक तनाव-सा रहने लगा। भाई साहब पैसे का तकाजा करते थे और भाभी टालते हुए थक गई थी। पिछले कई दिनों से उसके भाई ने उसे मिलना भी बंद कर दिया था। भाभी सोचती, एक तो पल्ले से रकम दी और दूसरा अपने भाई को भी गंवा दिया।

भाई साहब को इन चिकनी-चुपड़ी बातों से कोई वास्ता नहीं था। इतने दिन वे उनका मुह देख चुके थे। अब वे कहते, या तो कुन्दन उनकी रकम चुकाए या वह उसका स्कूटर छीनकर बेच डालेंगे। और यों अपनी उधार दी हुई रकम का कुछ न कुछ हिस्सा उन्हें मिल जाएगा।

भाभी सुनती और उसे चारों कपड़े आग लग जाती। उठते-बैठते वह बड़बड़ाती रहती। कभी अपने भाई पर, कभी अपने घरवाले पर खफा होती रहती। ज्यादा शिकायत उसे अपने मर्द से थी। क्या हुआ जो चार दिन उसकी रकम रुक गई थी। लड़का कोई इन्कार थोड़े ही करता था। आज नहीं तो कल, दूध-से धोकर पैसा लौटा देगा।

भाई साहब को इन बातों में कोई विश्वास नहीं था। उनके सब्र का प्याला छलकने लगता और वे भाभी पर नाराज होने लगते।

कई महीने यों बदमगजी होती रही। भाई साहब और भाभी तो परेशान थे ही, हम बाकी घरवाले भी बहुत तंग आ गए थे।

और फिर अचानक कुन्दन ने अपना कर्ज उतारना शुरू कर दिया। हर हफ्ते आता और कुछ न कुछ रुपये अपनी बहन के हवाले कर जाता। कभी ज्यादा, कभी कम। हम सब खुश थे। कुन्दन का काम चल निकला था।

और फिर एक बार जब कुन्दन अपनी बहन को पैसे देने आया, आंगन में बैठा, वह हमें अपने पेशे की कहानिया सुनाने लगा। हम लोग उससे पूछ रहे थे, आखिर उसकी कमाई एकदम कैसे हो गई थी कि उसने अपना कर्ज उतारना शुरू कर दिया। हम देख रहे थे, कुन्दन आजकल अच्छा खाता था, अच्छा पहनता था। जब भी आता, पान की गिलौरी उसके गालों में होती। कभी किसी रंग की बुश्शर्ट, कभी किसी रंग की। चमचमाते बूट।

"असल मे जादू इसका है।" कुन्दन हंसता हुआ हमें एक सुआ दिखा रहा था। यह सुआ उसने अपने दायें कान के पीछे पगड़ी मे छिपाया हुआ था। हम लोग हैरान होकर उसके मुह की ओर देख रहे थे। एक बेहद चालाकी से वह सूए को कानों के पीछे पगड़ी मे छिपा देता और फिर वैसी ही फुर्ती से उसे खीचकर बाहर निकाल देता।

हमारी समझ में अभी तक कुछ नही आ रहा था।

और फिर कुन्दन हमें बाहर सड़क पर खड़े अपने स्कूटर के पास ले गया। स्कूटर को वह स्कूटर थोड़े कहता था! स्कूटर को वह 'कुन्दन दी गड्डी' कहता था। धुली हुई, पालिश से चमचमा रही। कुन्दन ने हमारे सब्र को और आजमाए बगैर हमें बताया :

"समझ लो आप मेरी सवारिया है। यहा पहुंचकर आप कहेंगी, 'भाई स्कूटर वाले, हम कोठी के अंदर होकर अभी आते है। तुम जरा रुकना।' और फिर आप लोग अपने मिलने वालों के पास चले जाते है। उधर आपकी मेरी तरफ पीठ हुई और इधर मैं अपने सूए के साथ जादू

करना शुरू कर देता हूं। एक आख उस तरफ जहां सवारियां गई हैं और दूसरी आख स्कूटर के मीटर पर।" और हमने देखा कुन्दन मीटर के एक सुराख मे सुआ डालकर उसे इस ढंग से दबाता कि मीटर में 'टिक' की आवाज होती और मीटर की पढत बदलने लगती—20 पैसे, 40 पैसे, 60 पैसे, 80 पैसे··· । और यों रकम कुछ की कुछ हो जाती है। और जब तक सवारियां लौटती हैं उनकी जेब कट चुकी होती है।" कुन्दन हंस-हंसकर कितनी देर हमे अपने पेशे की इस तरह की कारस्तानियां बताता रहा।

हम सब बच्चे अवाक् उसके मुह की ओर देख रहे थे। कुन्दन अपने सूए को 'अलाउद्दीन का चिराग' कहता था। झट उसे छिपा देता, झट उसे निकाल देता। हमारे मारे हंसी के पेट फूल रहा था।

"यह तो हाथ की सफाई है, हाथों की कमाई नहीं," कुन्दन बार-बार कहता। "स्कूटर की कमाई से तो बस पेट ही भरता है।"

और हमारी समझ में आया कि कैसे कुन्दन की कमाई आजकल इतनी हो गई थी कि वह अपना कर्ज भी उतार रहा था और खुद भी ठाठ से रहता था। सिनेमा देखता, दारू पीता, मुर्ग-कबाब खाता था।

आज फिर भाई साहब और भाभी में तू-तू, मैं-मैं हो रही थी। आज की झड़प कुछ अधिक गंभीर प्रतीत होती थी।

और फिर हमे पता चला कि दिन मे कुन्दन आया था और वह भाई साहब की शेप सारी की सारी रकम लौटा गया था। भाभी ने जब उससे पूछा तो कुन्दन ने उसे बताया कि पिछली रात कोई सवारी अपना अटैची केस उसके स्कूटर में भूल गई थी। अटैची केस नोटों से भरा हुआ था। उस रकम से कुन्दन पहले अपना कर्ज उतार रहा था, बाकी पैसों से वह मोटर कार खरीदने की सोच रहा था। अब वह टैक्सी चलाएगा।

लेकिन भाई साहब इस तरह हाथ आये पैसे को हाथ लगाने के लिए तैयार नही थे। बार-बार कहते, "पता नही किसीको लूटकर ले आया तुम्हारा भाई।" और नोटों की गड्डी को फर्श पर पटक देते। भाभी

कहती, अगर चोरी भी की थी तो कुन्दन ने की थी इनको अपनी डूबी हुई रकम मिल रही है। इन्हें इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। भाई साहब सुनते और उनका क्रोध और भड़क उठता, झाग-झाग हुए वे लाख-लाख गालियां सुनाते भाभी को और भाभी के आवारा भाई को। और यों वे शाम ने एक-दूसरे पर खफा हो रहे थे और अब रात हो गई थी। न उन्होंने खुद कुछ खाया था, न घर में किसी और की सुध ली थी।

हम-जिन्स

कुन्दन सुनार के यहां बच्चा हुआ था। अब तो वे अपने-आपको जोहरी कहलवाते थे। अब तो उनके शो-रूम के सामने जहाज जैसी बड़ी मोटरों की लाइन लगी रहती थी। क्या गोरे और क्या बिगडे हुए देसी सरमायादार, लोगों की इस तरह उनके यहां भीड लगी रहती जैसे शहद की मक्खियों का छत्ता हो। हीरे और जवाहर, पुखराज और पन्ने, माणिक और मोती, सोने और चांदी के गहनों के नित्य नये फैशन! और अब वे नोहरियों की गली में धुएं से पुते घर में थोड़े ही रहते थे, अब तो माडल टाउन में उनका बंगला था। बंगला क्या था, जैसे महल हो। देख-देखकर भूख नही मिटती थी। उधर से गुजरने वाला हर कोई एक बार रुककर उसे जरूर निहारता।

पर सवाल यह था, कुन्दन सुनार को ऐसी क्या मुसीबत पड़ी थी कि बच्चों पर बच्चे पैदा किए जा रहा था। हर साल नया कैलेण्डर! पहले ही उसके पांच बच्चे थे—तीन बेटियां और दो बेटे!

उसका खयाल है कि औलाद बराबर-बराबर होनी चाहिए। जितनी बेटियां, उतने ही बेटे।

"तो इस बार बेटी हुई या बेटा?" उसने अपनी पत्नी से पूछा।

उसकी पत्नी लेडी डाक्टर थी। उन्हीके नर्सिंग होम में तो कुन्दन की बीवी की जच्चगी हुआ करती थी।

उसकी पत्नी ने कोई जवाब नही दिया। अपने अस्पताल के मरीजों के बारे में जिक्र करना उसे अच्छा नहीं लगता था। लेकिन कुन्दन की पत्नी सिर्फ मरीज थोड़े ही थी, वे पड़ोसी भी तो थे। उनका एक-दूसरे के यहां आना-जाना था। बहन-भाइयों की तरह वे लोग घुले-मिले थे।

और फिर बात टल गई। क्या फर्क पड़ता है, कुन्दन जैसे लखपती के यहां पांच बच्चे हों या छह। उसे क्या परवाह थी! नौकर-चाकर पालने के लिए थे। अंधा पैसा।

उस शाम उसने अपनी पत्नी को टेलीफोन पर बात करते हुए सुना। दूसरी ओर कुन्दन था।

"नहीं कुन्दन भाई साहब! मैं नहीं सोचती, कोई फायदा होगा।"

....

"आपरेशन से भी नहीं!"

....

"आप बेशक किसी और डाक्टर को दिखा लें। दिल्ली ले जाएं... लंदन ले जाएं।"

....

"आप समझ क्यों नहीं रहे हैं...वह न इधर है न उधर। आखिर इस तरह के बच्चे भी तो होते हैं।"

....

"ईश्वर की देन से कोई लड़ थोड़े ही सकता है।"

और फिर उसकी पत्नी ने झुंझलाकर टेलीफोन बन्द कर दिया। "फजूल—बेकार बातें..." वह बड़बड़ा रही थी।

"क्या बात है, कुन्दन के यहां बेटी हुई है या बेटा?" उसने अपनी पत्नी से पूछा। स्टेथस्कोप उठाए वह नर्सिंग होम में राउंड पर जा रही थी। उसने अपने पति के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

उत्तर देने की बात ही क्या थी! सारी बात तो उसने अपने कानों से सुन ली थी। कुन्दन से कुदरत दगा कर गई थी।

अगले रोज सुबह-सुबह कुन्दन स्वयं उनके घर आया। लेडी डाक्टर के सामने हाथ जोड़ रहा था कि वह इस बात का किसीसे जिक्र न करें, किसी को कानों-कान भनक न पड़े। अस्पताल की नर्सों को दे-दिलाकर उसने समझा दिया था। कुन्दन को डर था कि कहीं शहर के ख्वाजा-सराओं को पता चल गया तो वे झट आकर बच्चे पर कब्जा जमा लेंगे। इस तरह का बच्चा कहीं भी पैदा हो वह उनकी बिरादरी की मिलकियत

हो जाता है। उसे उन्हीके मुहल्ले में रहना पडता है, उन्हीके साथ उठना-बैठना, उन्हीके साथ सोना-जागना, उन्हीके साथ खाना-पीना।

और फिर कुन्दन के घर वाले इस भेद को छिपाने में सफल हो गए। पैसा क्या नहीं कर सकता! घर का नौकर, बच्चे की आया, हर किसीका मुंह बन्द कर दिया गया।

जब कुन्दन का यह बच्चा चलने-फिरने लगा तो मां की ममता, वह उसे लडको की तरह कपड़े पहनाती, लड़कों की तरह बाल बनाती। उसका [illegible] । लेकिन कस्तूरी था [illegible], उनके साथ हंसता-खेलता रहता। हसता तो लडकियो जैसा, खेलता तो लड़कियों के खेल, गाता तो लडकियो के गाने। उसकी मां, उसके नौकर-चाकर उसे लाख समझाते। कस्तूरी को उनकी कोई बात समझ में न आती। उसके जी में जो आता, वही करता।

जब वह और बडा हुआ तो कस्तूरी को स्कूल नहीं भेजा गया। उसके लिए घर पर ही ट्यूटर रख दिए गए जो उसे सुबह-शाम पढा जाते।

कच्ची पहली, पक्की पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी···कस्तूरीलाल घर मे ही पढकर एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे चढता गया। फिर यों ही उसने प्राइवेट मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। वह कभी नेकर पहनता, कभी पतलून, कभी बुश्शर्ट, तो कभी कमीज, लेकिन उसे जब भी मौका मिलता किचन में जा घुसता और बावर्ची के साथ कुछ खाना-वाना पकाना शुरू कर देता। कभी दाल-चावल चुनने लगता तो कभी आटा गूंथने लगता।

वह ज्यों-ज्यों बडा हो रहा था, उसकी शक्ल अजीब-सी निकलती आ रही थी। उसकी आवाज भी अजीब-सी होती जा रही थी। दूसरे बच्चों से भिन्न। और फिर उसकी समझ मे आ गया कि वह सबसे भिन्न है—न लडका न लड़की; न मर्द न औरत।

उसे एक झटका-सा लगा। लेकिन फिर उसने वास्तविकता को स्वीकार कर लिया। जैसे उसके माता-पिता तथा भाई-बहनों ने कब से इस नागवार सच को स्वीकारा हुआ था।

पर, यह बात कि कस्तूरी हिजड़ा है, कब तक दबी रहती! भरे शहर

में इस तरह का राज कब तक बना रहता ! ग्राखिर यह खबर हिजड़ों की बस्ती तक जा पहुंची । जिस दिन उन्हे पता चला, हिजड़े तालियां बजाते उनके बगले पर ग्रा धमके । वे तो ग्रपनी जाति के प्राणी को लेकर ही जाएंगे । कस्तूरी को छिपा दिया गया लेकिन वे मानने वाले थोडे ही थे। छावनी डालकर ऐसे बैठ गए कि हिलने का नाम ही न ले । सुबह से ग्राए हुए शाम हो गई थी । खूब पेट-पूजा भी कर ली थी, खूब खातिर भी करवा चुके थे । लेकिन कस्तूरी को साथ लिए बिना वहां से हटने को तैयार नही थे। वे बंगले के गेट पर जमे थे। ग्रडौसी-पडौसी, राहगीर रुक-रुककर ग्रपनी राह चल देते ।

ग्राखिर कुन्दन ने हिजड़ो के साथ सौदा कर लिया । उनकी मुट्ठी गर्म करके उन्हे लौटा दिया गया । मुंहमागी मुराद । उन्होने मुंह से जो निकाला वही लेकर टले ।

हिजड़ों की बिरादरी के साथ यह तय हुग्रा कि हर महीने की पहली को कुन्दन उन्हें सौ रुपया नकद ग्रौर कुछ इनाम दिया करेगा । महीने के बीच मे भी जब हिजड़ों मे से किसीका उधर गुजरना होता तो तालियां बजाता, कुन्दन के बंगले पर ग्रा धमकता कि हम ग्रपने कस्तूरी को देखने ग्राए हैं । कस्तूरी के भाई-बहन कुछ दे-दिलाकर उससे ग्रपना पीछा छुड़वाते । इतने बड़े घर में मेहमानो का तांता तो लगा ही रहता है । कोई सुनता तो क्या कहता !

सौ रुपये माहवार से शुरू हुए, बढते-बढते ग्राजकल पांच सौ रुपया महीना उनकी 'लाग' हो गई थी । जैसे-जैसे साल बीतते, वे लोग पैर ग्रौर लम्बे पसारते जाते। कपड़ो के साथ कपड़े, रसद के साथ रसद, फलों के साथ फल। ग्रौर पहली तारीख को ग्रपनी 'लाग' ग्रलग, पांच सौ रुपये नगद गिनकर धरा लेते ।

कुन्दन के घर वाले भी सच्चे थे । बेशक वह हिजडा था, पर इतने बड़े घर में से कोई ग्रपनी ग्रौलाद कैसे हिजडो की बस्ती में रहने के लिए भेज दे !

उधर हिजड़े भी सच्चे थे । वे लोग ग्रपनी ग्रौलाद तो पैदा नही कर सकते थे। ग्रगर शहर में जन्मे हिजड़े उनके साथ ग्राकर शामिल न हों

तो ख्वाजा-सराम्रो का धंधा कैसे चले ! वे तो भूखे मर जाएं । उन्हें खाने को भी चाहिए, पीने को भी चाहिए, सिर पर छत भी चाहिए । इन्हें गाना सीखना होता है, नाचना सीखना होता है, सजने-संवरने के लिए पाउडर-सुर्खी खरीदनी होती है । हारमोनियम, बाजे और तबले । शृंगार-पट्टियां और घुंघरू । खुशबूदार तेल और ऊंची एड़ी के सैंडिल ।

जितनी बड़ी तादाद में हिजड़े कहीं जाते उतनी ज्यादा उनकी आमदनी होती । उन्होंने मुहल्ले और बस्तियां बांटे हुए थे । शहर इस तेजी से बढ़ रहे थे कि हिजड़ों से संभाले न संभलते ।

और फिर आजकल के लोगों के घरों में कुछ न कुछ हमेशा होता रहता है । बच्चे चाहे कम पैदा हो रहे थे, लेकिन और तरह की खुशियां बढ़ गई थीं । जन्मदिन की पार्टियों का ही तांता लगा रहता था । मुंडन और नामकरण । सगाई और ठाके । ब्याह और गौना । जितने हिजड़े, उतने ही थोड़े ।

कस्तूरी ज्यों-ज्यों बड़ा हो रहा था, वह एक अजीब-सी परेशानी महसूस करने लगा था । कदम-कदम पर कोई न कोई उलझन उसे आकर घेर लेती । अड़ौस-पड़ौस के लड़के उसे 'सिसी' कहकर बुलाते । और लड़कियों को उसमें से मर्द की बू आती । अजीब बेढब-सा उसका चेहरा निकलता आ रहा था । मोटे-मोटे होंठ । पकौड़े-सी नाक । घनी काली भवें, सामने गर्दन में बढ़ी हुई घुंडी । फटी हुई आवाज । लड़कों के कपड़े पहनता, लेकिन लड़कियों जैसी चाल । लड़कियों की तरह शरमाना, लड़कियों जैसी झिझक ।

कस्तूरी हैरान होता । लड़कों की तरह वह रहता था । लड़कों के साथ उठता-बैठता था । लड़कों के साथ हंसता-खेलता था लेकिन रात को जब वह सोता उसे लड़कियों जैसे सपने आते थे । कई बार आप ही आप उसकी जबान पर लड़कियों के बोल आ जाते, "हाय ! मैं मरी···मैं वारी-वारी जाऊं ··हाय ! मेरी तौबा ··"

उसके सभी साथी लड़कों की दाढ़ी उग आई थी, मगर उसकी दाढ़ी पर अभी कोई बाल नहीं था । उसके सभी दोस्त शेव बनाते थे । ब्लेड और उस्तरे की बातें करते थे और वह उनके मुंह की ओर देखता रहता ।

अड़ौस-पड़ौस के लडकों के साथ खेलते हुए कस्तूरी महसूस करता कि वह अपने साथियों से कही पहले थक जाता था। अपने साथियों से कहीं पहले उसका पसीना छूटने लगता। अपने साथियो से कहीं पहले उसका दम फूलने लगता। अपने साथियों से कही पहले उसका चेहरा लाल-सुर्ख हो जाता। उसके साथी लड़कों ने उसका नाम रखा हुआ था—'उई मैं तो थक गई'।

जाड़े के उन दिनो में, उनके बंगले के सामने की कोठी में कोई किराये-दार आ गए। कोई स्टेट बैंक का मैनेजर था। ढेर-सा कुनवा। इतवार की सुवह जब वे सज-धजकर गिरजाघर इबादत के लिए जाते तो एक रेले का रेला घर से निकलता। हर आयु के बच्चे, जवान-जवान लडके-लडकिया, और अभी मा-बाप का कुछ नही विगड़ा था। मा इस तरह सजती-सवरती, इस तरह के शोख रंग के कपड़े पहनती कि लोग देखते रह जाते।

इन नये पडौसियों की एक वेटी को कस्तूरी भा गया। घंटो खिड़की मे बैठी वह उसे ताकती रहती। उसका कमरा कस्तूरी के कमरे के ठीक सामने खुलता था। कस्तूरी उससे कतराता रहता। जैसे-जैसे वह उससे बचने की कोशिश करता, पडौसिन लड़की उतनी ही उसकी दीवानी होती जाती, उसका पीछा करती। आखो मे आसू लिए, देर रात तक खिडकी में बैठी, एक नजर कस्तूरी को देखने के लिए तड़पती रहती। जब वह नजर आता, अपने होठो पर उगलियां रखकर उसे 'फ्लाइंग किस' देने लगती। कस्तूरी अपनी खिड़की बन्द कर लेता, लेकिन लड़की जैसे समूची उसके लिए विक चुकी थी। लड़की ने उसे चिट्ठिया लिखनी शुरू कर दी।

और फिर कस्तूरी को भी जैसे वह अच्छी लगने लगी। कितनी प्यारी-प्यारी चिट्ठिया लिखती थी। वह तो इसके लिए कोई भी कुर्बानी कर सकती थी। वेशक रंग जरा सांवला था लेकिन कितनी नमकीन थी वह! कितनी प्यारी मोटी-मोटी अंखिया! इसकी ओर यो देखती जैसे घूंट-घूंट इसे पी रही हो।

. और फिर जैसे उनका यह खेल बन गया। रात-रात-भर वे जागते रहते। सड़क के पार अपने कमरे की खुली खिड़की मे वह खड़े-खड़े, बैठे-

बैठे अपनी नुमाइश करती रहती। कभी किसी तरह सजती, कभी किसी तरह। कभी किसी तरह बालों को बनाती, कभी किसी तरह। कभी नाचने लगती, कभी गाने लगती। कभी रोने लगती'''छल-छल अश्रु!

यों ही, एक बार, कोई आधी रात को, वह हर रोज का नाटक कर रही थी। उस रात उसने पूछ-से सफेद रंग का गाउन पहना हुआ था—कंधों से लेकर पांव तक। कपड़ा इतना महीन था कि उसका अंग-अंग जैसे उभरकर बाहर आ रहा हो। और फिर गाउन पहनकर वह कितनी लम्बी लग रही थी! कस्तूरी एकटक उसे देखता रहा जैसे आसमान से उतरी कोई परी हो। और फिर उसने अपनी दोनों बाहों को ऊपर उठाया, उसके जीवन का निखार! एक नशे-नशे में लड़की की आंखें मुंद गई। उधर लड़की की पलकें बन्द हुईं, इधर जैसे कोई बंध खुल गए हों, रेशमी गाउन फिसलकर लड़की के पांव में ढेरी हो गया। एक आंख झपकने में लड़की ने हाथ बढ़ाकर कमरे की बत्ती बुझा दी।

सारी रात कस्तूरी की आंखों में एक हसीना का बूटे जैसा बुत घूमता रहा।

और फिर उन्होंने मिलना शुरू कर दिया। कभी कहीं, कभी कहीं। कभी किसी बहाने, कभी किसी बहाने। कस्तूरी हमेशा उससे कतराता, उससे बचने की कोशिश करता, लेकिन लड़की अपनी धुन की पक्की थी। बुरी तरह से उसपर फिदा थी। उसकी बहनें उसकी इस पसंद पर हसतीं। वह उनका मुंह-सिर नोच लेती। बस एक कस्तूरी, उसे और कुछ नहीं चाहिए था। उसकी मां को भी कोई आपत्ति नहीं थी। बेशुमार दौलत जो थी कस्तूरी के बाप के पास। उनका बंगला ही देखते बनता था।

वह उससे बचने की लाख कोशिश करता, लेकिन एक रोज शाम के झुटपुटे में पार्क के एक ओर कस्तूरी उसके हाथ लग गया। वह कब से एक पेड़ की ओट में खड़ी उसकी राह देख रही थी कि कब वह उधर से गुजरे। एक सांस उससे प्यार करने लगी। बार-बार उसके साथ चिपटती, बार-बार उसे छाती से लगाकर चूमने लगती, लेकिन वह तो ठंडा यख था, जैसे बर्फ की सिल्ली। लड़की हारने वाली नहीं थी। एक नजर इसके मुंह की ओर देखकर जैसे उसके अंग-अंग में वहशत समा गई

हो। उसने फिर इसे बाहु-पाश में जकड लिया और क्षण-क्षण बढ रहे अंधेरे मे, वह कस्तूरी को चूमे जा रही थी—एक नशे में, एक उन्माद में। उसके होंठ इसके होंठो, उसकी जीभ इसकी जीभ पर, उसके दात इसके दातो मे !

यों प्यार करते हुए लडकी ने कस्तूरी को नीचे घास पर लिटा लिया और स्वयं एक मस्ती मे उसके साथ लेट गई—घने पेडो के बीच, पार्क के एक सूने कोने में। आकाश मे चाद निकल आया था। वह तो पूरे चाद की रात थी। चाद की चादनी पेड़ों के पत्तों में से छन-छनकर उसकी छाती के उभारो पर पड रही थी। एक उन्माद मे, एक नशे में, वह घास पर चित पडी थी। फिर एक अटूट आवेग···और एक-एक करके उसकी अंगिया के बंध आप ही आप खुलते गए। चाद की चादनी उसके टोलों के साथ भिड रही थी, उसके गडो में खुभ रही थी। उसके दिल की धडकन तेज, और तेज, और तेज होती जा रही थी।

और उसके साथ घास पर लेटा हुआ कस्तूरी यो पड़ा था जैसे भीगी हुई ईंट हो। ठंडा यख, टुकुर-टुकुर उसकी ओर देख रहा था। उसका कलेजा धक-धक कर रहा था, जैसे फंदे मे फंसी हुई कोई फाख्ता हो।

और फिर अचानक उसके मन में न जाने *क्या आया* कि भरपूर जवान-जवान लडकी ने करवट बदली। एक पजे के बल वह उठी, और दांत पीसकर, दायें-बायें कस्तूरी के दोनों गालो पर तड़ातड तमाचे जड़-कर, फुकारती, दहाडती अपने ब्लाउज के बटन बद करती हुई तेज-तेज कदम पार्क मे से निकल गई। कस्तूरी देर-रात तक वही पार्क मे अकेला मिट्टी के साथ मिट्टी होता रहा।

वह दिन, और कस्तूरी का जैसे घर से निकलने का मन न करता हो। उसकी कमरे की खिड़की हमेशा बन्द रहती जैसे सामने के घर के कमरे की खिड़की बद रहती थी। और फिर उसका मन बहल गया। कस्तूरी के बडे भाई की शादी हो रही थी। घर में आवाजाही, खाना-पीना, चहल-पहल। फिर बारात निकली। फिर डोली आई।

डोली को आए हुए ज्यादा देर नही हुई थी कि हिजड़ों की टोली

उनके आंगन में आ धमकी ! ढेर सारे थे। उनका आंगन भर गया। दूर सड़क के मोड़ से ढोलक पीटते हुए, तालियां बजाते, नाचते हुए वे बधाइयां गाने लगे। खुशी का मौका था। इस तरह के अवसरों पर इन लोगों का आना बनता था। सारे घरवाले, दूर-पास से आए सभी मेहमान बंगले के विशाल प्रांगण में इकट्ठे हो गए थे। हिजड़े भी गा-गाकर, नाच-नाचकर थक नहीं रहे थे। इतना बड़ा घर, इतने बड़े सरमायेदार के बेटे का ब्याह। वे तो जितनी खुशी मनाएं उतनी थोड़ी थी। जितनी बलाएं लें, उतनी कम थी। जितनी 'लाग' मांगें, उतनी बनती थी। ढोलकिया ढोलक पीट-पीटकर नहीं अघाता था, बाजेवाले की उंगलियां सुरों पर फिरकनी की तरह चल रही थीं। हिजड़े एक-एक, दो-दो, चार-चार नाच रहे थे। और अब सबके सब नाचने लगे थे। तालियों से ताल देते और नाचते जाते—तेज और तेज। जैसे उनके पांव धरती पर न लग रहे हों।

यों हिजड़े नाच रहे थे, चारों ओर सगे-संबंधियों की, अड़ोस-पड़ोस वालों की भीड़ जमी हुई थी कि बंगले के एक कमरे में से साड़ी बांधे, लिपस्टिक से होंठ रंगे, पांव में घुंघरू बांधे कस्तूरी नाचता हुआ निकला, और हिजड़ों के नाच में शामिल हो गया। कस्तूरी को यों उनमें घुल-मिल जाते देखकर घरवालों की ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। हिजड़ों ने कस्तूरी को यों अपने में शामिल होते देखा तो उनकी लय और तेज हो गई। ढोलक वाले ने और तेज थाप देना शुरू कर दिया। एकस्वर, एकताल पांव उठे। एकस्वर, एकताल अंग थिरके, नाच तेज होता जा रहा था, और तेज होता जा रहा था।

घेराव

सुबह जब वह दफ्तर पहुंचा, मशीन कमरे को ठंडा कर रही थी। दरवाजे, खिडकियां बंद थे। परदे गिराये हुए थे। गर्मियों में ऐसा ही होना चाहिए। पर इस वर्ष ऐसा कभी नहीं हुआ था। कई दिनों से सारे दफ्तर का वातावरण विषैला-विषैला था। बात-बात पर बाल की खाल उतारी जाती। जगह-जगह पर खुसर-फुसर हो रही होती। कदम-कदम पर कर्मचारी कायदे-कानून छांटने लगते। दस बार सोचकर अफसर मुह खोलते। बीस बार सोचकर कोई किसीको काम करने के लिए कहता। अपनी आबरू आदमी के अपने हाथ होती है।

उस दफ्तर में पिछले कई दिनों से एजीटेशन हो रहा था। कोई विशेष कारण एजीटेशन का नहीं था। क्योंकि बाकी दफ्तरों में कर्मचारी संघ बने हुए थे, उस दफ्तर वालो ने भी अपनी यूनियन बना ली थी। यूनियन बनाने के बाद, क्योंकि दूसरे दफ्तरों में एजीटेशन होता था, इस यूनियन के लीडरों ने भी एजीटेशन करना जरूरी समझा। इस इरादे से जब वे सोचने बैठे, तो कई शिकायतें भी उनके हाथ आ गई। जैसे दफ्तर में भरती और तरक्की के बाकायदा नियम अभी तक नही बने थे। जिनकी तरक्की होनी होती, बेशक समय पर हो जाती, बल्कि बाकी दफ्तरों के मुकाबले मे इस दफ्तर मे तरक्की कहीं जल्दी ही होती थी, लेकिन बाकायदा नियम होने जरूरी थे। एक तो यह शिकायत थी। दूसरी माग यह नजर आई कि मकानों के किराये बढ़ते जा रहे थे और इस मुद्दे का भत्ता काफी नहीं था। बेशक भत्ता बाकी दफ्तरों जितना था, पर इसे बढ़ाया जाना चाहिए था। यह दलील कि बाकी लोगों के साथ उनका भत्ता भी बढ़ जाएगा, किसीकी समझ में नहीं आ रही थी। इसके

अतिरिक्त, और दो-चार जो मानने वाली बातें थी, उनके मुंह से बाद में निकली, पहले ही मान ली गईं। नौकरी के नियम बनाकर नोटिस बोर्ड पर लगा दिए गए ताकि उनके बारे में अमले की राय जानी जा सके। फिर कार्यवाही कमेटी के सामने रखकर उनको परवान करावा लिया जाना था। यूनियन के लोगों की शिकायत थी कि नियम बहुत उदार थे, कमेटी इनको पास नही करेगी। यानी, रोटी खाते हुए तेरी दाढ़ी हिलती है, मैं तेरे साथ नही बसूंगी।

और उन्होंने अपना एजीटेशन जारी रखा। हर रोज दोपहर, आधी छुट्टी को, दफ्तर का अमला बाहर बरामदे में इकट्ठा होकर जिंदाबाद, मुर्दाबाद के नारे लगाने लगता। फिर उन्होंने 'स्यापा' करना शुरू कर दिया। अफसरों और अफसरों के मां-बाप को धुनना शुरू कर दिया। गंदी गालियां बकते। मन-मन के कुफ्र तोलते। कभी बाहर से दूसरी यूनियनों के लीडरों को बुलवाकर भाषण करवाते। बाहर के लोग आकर उन्हें और भड़का जाते। किसी तरह भी ये लोग मान नही रहे थे। और एजीटेशन कई दिनों से चल रहा था।

कुछ समझ में नहीं आ रहा था। दफ्तर के हितैषी, शुभचिंतक यूनियन वालों को समझा-समझाकर थक गए थे। वह स्वयं उनको संदेश भेजता रहता, बुला-बुलाकर समझाता रहता, आखिर बेहूदगी की भी कोई हृद होती है! कब तक उनकी ये हरकतें सहन की जा सकती थीं! पर वे लोग टस से मस नहीं हो रहे थे। विरोधी पार्टियों को यह सब कुछ सुहाता था। कभी एक पार्टी वाले आकर उनको भड़का जाते, कभी दूसरी पार्टी वाले उनको सब्ज बाग दिखा जाते।

फिर एक शाम को वे डायरेक्टर के घर जा पहुंचे। झंडे लेकर, माइक्रोफोन और लाउडस्पीकर उठाए हुए, कोई तीन घंटे तक वे नारे लगाते रहे और जो मुंह में आया बकते रहे। आसपास कालोनी के लोग तौबा-तौबा कर उठे। इतने बेहूदा इलजाम, इतनी गंदी गालियां, उन्होंने किसीको नहीं छोड़ा। घंटों तक डायरेक्टर को, उसकी पत्नी को, उसके बच्चों को धुनते रहे। डायरेक्टर स्वयं घर में नहीं था, जान-बूझकर क्लब में रुक गया था। उसकी पत्नी ड्यूटी पर थी, जब लौटी, घर के सामने प्रदर्शन

देखकर, पास की गली में एक मित्र के यहा चली गई। उनकी जवान बेटी घर पर थी; उनके समझाने पर भी वह बाहर नहीं गई। "आखिर मैं अपना घर छोड़कर क्यों जाऊं?" और उसने वह सारा कुफ्र सुना, जो बेहूदा नाटक रचाया गया वह उसने गोल कमरे के शीशे वाले दरवाजे के पीछे से देखा। जब डायरेक्टर घर लौटा, सारी कहानी सुनकर रात-भर उसे नींद नही आई। अगले दिन उसे लग रहा था जैसे उसका सारा बदन जल रहा हो। वह दफ्तर नहीं जा सका।

दफ्तर कोई कब तक न जाता? एक दिन गैरहाजिर रहा और फाइलों के ढेर उसकी मेज पर लग गए थे। पर दफ्तर का वातावरण कुछ ऐसा हो गया था कि दफ्तर के खयाल से ही उसका दम घुटने लगता। सामने बस स्टैंड का मोड़ काटकर जब दफ्तर का भवन दिखाई देता, उसका दिल डूबने लगता। वह दफ्तर जिसे बनाने में, एक-एक ईंट उसने चाव से लगवाई थी, अब उसे जहर लगता था। बात-बात पर अमला काम छोड़कर बाहर आंगन मे इकट्ठा हो जाता और नारे लगाने लगता। बात-बात पर जिंदाबाद, मुर्दाबाद होने लगता। हर रोज आधी छुट्टी को, बिला नागा वे लाउडस्पीकर लगाकर प्रदर्शन करते और डायरेक्टर तथा उसके निकट के अफसरों को धुनते रहते। तौबा, तौबा! किस तरह झूठे आरोप लगाते थे। वह सुन-सुनकर भीतर ही भीतर खून के आंसू रोता रहता। उसने अपने सपनों की एक संस्था बनाई थी जिसके परखचे उतारे जा रहे थे, रेजा-रेजा उडाया जा रहा था।

वह दिन उसे आम दिनों की तरह लग रहा था। हर चीज अपने ठिकाने पर थी। हर काम ठीक ढंग से हो रहा था। फाइलें आ रही थी, जा रही थी। चपरासी घंटिया सुन रहे थे। टेलीफोन बज रहे थे। वह मन ही मन में ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद कर रहा था कि अचानक उसके कमरे का दरवाजा खुला और पर्दे को हटाकर यूनियन का एक कर्मचारी अंदर आ घुसा। वह हैरान उसके मुह की ओर देख रहा था। इस तरह आज्ञा लिए बिना दफ्तर का कोई आदमी उसके कमरे मे नही आया करता था।

"मैं यह पूछने आया हू कि आप हमारी यूनियन को मान्यता देंगे या

नहीं ?" घुसते ही वह चिल्लाया।

"मान्यता देना कार्यवाही कमेटी के हाथ में है। मैंने यह मामला उनके सामने पेश किया हुआ है।" डायरेक्टर ने कहा। पहले भी कई बार उनको यह बताया जा चुका था।

"हमें अपनी यूनियन की मान्यता अभी लेनी है, इसी क्षण लेनी है।" यह कहते हुए उसने दरवाजा खोला और जिंदाबाद, मुर्दाबाद करता ठठ का ठठ निचली श्रेणियों का सारा अमला डायरेक्टर के कमरे में आ घुसा। चपरासी, क्लर्क, असिस्टेंट, लडकियां, लड़के सबके सब थे। वे अंदर घुसे और कमरे की बिजली गई। एयरकंडीशनर बंद हो गया, पंखा रुक गया। वह हैरान, उनके मुंह की ओर देख रहा था कि यूनियन के लीडर ने कहा, "हमने आपका घेराव कर लिया है। इस दफ्तर की बिजली बंद कर दी गई है। आपका टेलीफोन काट दिया गया है।" और फिर उन्होंने नारे लगाने शुरू कर दिए। "मुर्दाबाद, जिंदाबाद।" एक आम दफ्तर के कमरे में कोई पचास स्त्री-पुरुष एक अकेले अफसर को घेरे हुए थे। गालियां बक रहे थे। खिड़कियां बंद थीं, दरवाजे बंद थे। उसे लगा जैसे उसका दम घुटकर रह जाएगा। उसने सिर उठाकर एक खिड़की की ओर देखा।

"सब खिड़कियां बंद हैं। सब दरवाजों को ताले लगे हुए हैं। बाहर गेट पर भी ताला लगा दिया गया है।" यूनियन के लीडर ने हंसते हुए उसे बताया और जेब में से सिगरेट निकालकर सुलगा ली। और फिर वह सिगरेट के कश लगा-लगाकर डायरेक्टर का मजाक उड़ाने लगा। हर बार वह कोई फबती कसता, और उसके साथी खिलखिलाकर हंसते। उनमें डायरेक्टर के निजी सहायक भी थे, पहला भी, दूसरा भी, उसका निजी चपरासी भी था।

"जी, यह साहब आप तो अंदर एयरकंडीशंड कमरे में मजे करते हैं और इनका अमला बाहर गर्मी में भुनता रहता है।"

"हम इस एयरकंडीशनर को जला देंगे।" भीड़ में से एक पुकारा।

"इनकी मोटर छाया में रहती है, हमारी साइकिलें धूप में जलती हैं।"

"हम इनकी मोटर पर पथराव करेंगे।" एक और आवाज भीड़ में से चीखी।

डायरेक्टर बिट-बिट उनके मुह की ओर देखता जा रहा था।

"क्यों जनाब, आपने अपनी साली को दफ्तर में नौकर नहीं रखवाया?" यूनियन के लीडर ने एक लड़की का नाम लिया, जिसकी शक्ल भी अब तक डायरेक्टर की पत्नी ने नहीं देखी थी।

"इससे पहले क्या आपने औरों का हक मारकर अपने भाजे-भतीजे को भरती नहीं करवाया?"

अब वह एक और कर्मचारी की ओर संकेत कर रहा था जिससे डायरेक्टर का कोई दूर-पास का भी रिश्ता नहीं था।

"यह साहब तनख्वाह दो हज़ार लेते हैं, काम दो कौडी का करते हैं।"

"दस्तखत करते है। दस्तखत कौन नहीं कर सकता?"

"अब दस्तखत हम करेंगे। हममें से कोई दस कुर्सी पर बैठेगा।" भीड़ में से लोग बोल रहे थे।

कमरे में सास लेना दूभर हो रहा था। पंखा बंद, खिड़कियां-दरवाजे बंद। डायरेक्टर का पसीना चू-चूकर एड़ियो तक पहुंच रहा था। और फिर घेराव करने वालों का लीडर सिगरेट के कश पर कश लगाकर धुआ जैसे उसके मुह पर फेंक रहा हो। सारा कमरा सिगरेट के धुएं से भर गया था। उसके होंठ सूख रहे थे। उसे सख्त प्यास लग रही थी। और फिर यूनियन के लीडर ने डायरेक्टर के मन की बात जैसे बूझ ली हो, उसने जोर से पुकारा, "पानी लाओ।" और जब पानी का गिलास आया, उसने गट-गट स्वयं पीकर खाली गिलास डायरेक्टर की मेज पर पटक दिया।

अब फिर वे नारे लगा रहे थे:

"इस डायरेक्टर का सत्यानाश हो!"

"इस कलंकी डायरेक्टर का नाश हो!"

"इस झूठे डायरेक्टर का नाश हो!"

"इस कुत्ते डायरेक्टर का नाश हो!"

"इस चोर डायरेक्टर का नाश हो !"

नारे लगाते-लगाते उन्होंने छातियों पर दोहत्थड़ मारकर स्यापा, पीटना शुरू कर दिया।

"यह कौन मर गया ?"

"हाय डायरेक्टर मर गया !"

"इसपर कफन डालो !"

"स्नान कराओ !"

"स्यापा करो !"

"हाय, हाय, शेरा !"

'हाय, हाय, शेरा !"

ऐसा करते हुए कभी वे डायरेक्टर से सटकर खड़े हो जाते, कभी उसकी आखों से एक बालिश्त दूर, कभी उसके होंठों से चार अगुल दूर; कभी उसकी गातों को छूने से जरा-सा बचते। वह इशारे करते और गालियां बकते जाते, मन-मन कुफ्र तोलते जाते।

बार-बार कहते, "हमारी यूनियन को मान्यता दोगे या नहीं ?" अगर मान्यता नहीं दोगे तो इसी तरह सारा दिन घेराव जारी रहेगा। दफ्तर का गेट बंद है। सब रास्तों पर हमारा पहरा है। टेलीफोन बेकार कर दिए गए हैं। बिजली काट दी गई है। जब तक आप हमें मान्यता नहीं देंगे, हम घेराव नहीं उठाएंगे।"

गर्मी से डायरेक्टर के पसीने छूट रहे थे। सिगरेट के धुएं से, हवा बंद हो जाने से उसका दम घुट रहा था। खामोश वह बिट-बिट उनकी ओर देखता। फिर नीचे अपनी मेज की ओर देखने लग जाता।

सामने सोफे पर बैठा हुआ एक चपरासी अब डायरेक्टर की नकल उतार रहा था। दोस्तों के साथ बैठकर कैसे वह घंटों गप्पें हांकता था, काफी पीता था और वक्त खराब करता था। या फिर किताब लेकर पढ़ने बैठ जाता था। सारा काम अपने मातहतों से करवाता था। जब से नया डिप्टी आया था, डाक भी वही देखता था और जवाब भी वही देता था। वह तो कोरा सफेद हाथी था। जैसा खूंटे पर बाधा या चोरों के हाथ लगा। बेकार बैठा चारा खराब कर रहा था। या फिर वह हर दूसरे

महीने विदेश सैर को चल पड़ता था। या आप जाता था या दफ्तर में अपने पिट्ठुओं को भिजवाता था।

चपरासी नाटक रचा रहा था, खिल्ली उडा रहा था कि बाहर किसी-ने जोर-जोर से दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुला और डायरेक्टर को पुलिस के इंस्पेक्टर की पगड़ी दिखाई दी।

"बाहर गेट पर किसने ताला लगाया है ?" आते ही उसने पूछा।

"ताला हमने लगाया है।" यूनियन के लीडर ने कहा।

"उसे खोल दो। दफ्तर के गेट को कोई बंद नही कर सकता।"

पुलिस के इंस्पेक्टर के कहने पर बाहर के गेट का ताला खोल दिया गया। गेट खुला तो पुलिस का डिप्टी कप्तान और कई सिपाही दफ्तर में घुस आए। कुछ देर, और पुलिस इंस्पेक्टर उसके एक ओर आकर बैठ गया, डिप्टी कप्तान दूसरी ओर, डायरेक्टर के पीछे लाठी संभाले हुए एक सिपाही खडा था।

अमला उसी तरह नारे लगा रहा था। उसी तरह गंदी गालिया बक रहा था। जिसने पुलिस में शिकायत की है, हम उसको भी सुलट लेंगे।

और पुलिस के अफसर चुपचाप आकर बैठ गए थे। बिट-बिट उनकी ओर देख रहे थे, जो नारे लगा रहे थे। बिट-बिट डायरेक्टर की ओर देख रहे थे—उसके मत्थे से, उसकी पलको से चू रहे पसीने की ओर।

नारे लगाते-लगाते जैसे वे थक गए हों। अब उन्होंने भांगड़ा शुरू कर दिया। नाचते-नाचते कभी कूदकर डायरेक्टर की मेज पर चढ़ जाते, कभी उसकी कुर्सी की बाहों पर आ बैठते। नाचते भी जाते, गाते भी जाते। ताने कसते और उसके अगले-पिछलों को बार-बार धुनने लगते।

इस प्रकार आध-पौन घंटा और बीत गया। यूं लगता था जैसे अब वे थक गए हों।

डायरेक्टर को याद आ रहा था, पिछले दिनो विश्वविद्यालय के उप-कुलपति का घराव हुआ था। घेराव करने वालों ने अठारह घटे उपकुल-पति को कमरे मे रोके रखा। उसे गुसलखाने तक मे न जाने दिया। नारे लगाते, गालिया बकते, प्रदर्शनकारी नाच रहे थे, गा रहे थे कि उपकुल-पति का पेशाब पतलून में ही निकल गया।

और डायरेक्टर को लगा जैसे उसका जांघिया भी गीला-गीला हो रहा हो। नहीं, यह तो पसीना था। पसीना चू-चूकर उसका बुरा हाल हो रहा था। उसकी आंखों में अंधेरा छा रहा था, उसे चक्कर आ रहे थे। बार-बार वह मेज का सहारा ले लेता ताकि उसके होश कायम रह सकें।

पुलिस के अफसर ऐसे बैठे हुए थे जैसे मेहमान आए हों।

और उसे याद आया, कुछ दिन हुए प्रदर्शनकारी कर्मचारियों में से एक ने उसके पी० आर० ओ० से कहा था, "जब समय आएगा, पुलिस भी हमारे साथ होगी। हम इस दफ्तर की ईंट से ईंट बजा देंगे, तहस-नहस कर देंगे।" उसका मन कहता, हो न हो, जो उसने सुना था, सच ही था। और वह बिट-बिट पुलिस के अफसरों के मुंह की ओर देखने लगा। कभी एक की ओर, कभी दूसरे की ओर। उसका चेहरा हल्दी जैसा पीला हो गया था। यूं लगता, किसी भी क्षण उसे गश आ जाएगा।

इतने में दरवाजा खुला और भीड़ को चीरता हुआ अमले का एक नेता आ धमका। इस आदमी का उस दफ्तर से कोई संबंध नहीं था। किसी और दफ्तर में काम करता था, पर उस दफ्तर की यूनियन ने इसको अपना प्रधान चुन रखा था।

इस प्रकार अचानक अपने लीडर को अपने बीच देखकर प्रदर्शनकारी और ऊंचे नारे लगाने लगे। और गंदी गालियां बकने लगे। वे दफ्तर के अफसरों के साथ पुलिस को भी घसीट रहे थे।

कुछ देर, और यूनियन के नेता ने दोनों हाथ उठाकर उन्हें खामोश होने का इशारा किया। वह हैरान हो गया। वे लोग, जो पिछले कई घंटों से नारे लगा रहे थे, चेहूदगियां कर रहे थे, एक इशारे पर इस तरह खामोश हो गए जैसे मुंह में जबान न हो।

"मेरी राय है, जनाब! आप हमारे साथ समझौता कर लें।" यूनियन के लीडर ने आगे बढ़कर उससे बात शुरू की।

"कहिए।" उसने बोलने की कोशिश की, पर डायरेक्टर का मुंह सूख रहा था।

"अरे पानी पिलाओ, साहब को पानी पिलाओ" यूनियन के लीडर ने कुर्सी आगे खींचकर बैठते हुए, पानी पिलाने के लिए अमले में से एक

को आदेश दिया।

पानी पीकर डायरेक्टर की जान में जान आई।

"हा, तो मैं कह रहा था, झगड़े में किसीको भी फायदा नही। हमें समझौता कर लेना चाहिए।" नेता ने फिर बात शुरू की।

"हां, बताइए, आपकी मांगें क्या हैं ?" अब पुलिस का एक अफसर बोला।

"पहली यह कि हमारी यूनियन को मान्यता दी जाए।" नेता ने अपनी मांगें गिनानी शुरू की।

डायरेक्टर ने अपनी पोजीशन को स्पष्ट किया। "यूनियन को मान्यता सरकार दे सकती है। सरकार मे भी गृह मंत्रालय, और कोई नही। उनको इस संबंध में लिखा जा चुका है।"

"अगर वहा से स्वीकृति आ गई, तो आप हमें मान्यता देंगे ?"

"इससे मैंने कभी भी इनकार नही किया।"

"और रिहायशी भत्ते के बारे मे आपकी क्या राय है ?"

"यह मामला भी सरकार को भेज दिया गया है। फैसला सरकार को करना है।"

"अगर सरकार की स्वीकृति आ गई, तो आप अतिरिक्त भत्ता मंजूर कर लेंगे ?"

"इससे मैंने कभी भी इनकार नही किया।"

"भरती और तरक्की के नियम ?"

"इस बारे में जो कुछ हमें करना था, कर दिया गया है।" डायरेक्टर ने कहा।

"हां, हां, इस बारे मे कार्यवाही शुरू है," बाकी अमला बोल उठा।

"बाकी रह गया मामला अमले को पक्का करने का ?"

"इस बारे में भी कार्यवाही शुरू है।" प्रदर्शनकारी एक स्वर में बोले।

"तो फिर यह सब कुछ समझौते की शक्ल मे लिख लिया जाए ?"

"बेशक।"

स्टेनो बुलवाया गया और समझौते की जिन शर्तों पर निर्णय हुआ

था, लिखवा दिया गया। कुछ देर बाद शर्तें टाइप होकर आ गईं।
यूनियन वालों को शिकायत थी कि शर्तें सादा कागज पर टाइप हुई थीं,
दफ्तर के फार्म पर नहीं। शर्तों को फिर टाइप करवाया गया। समझौते
की नकलों पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हुए और जिंदाबाद के नारे लगाते,
खुशी में बगलें बजाते, चिल्लाते प्रदर्शनकारी घेराव छोड़कर चले गए।

पुलिस के अफसर अभी तक डायरेक्टर के कमरे में थे। उसे समझ
नहीं आ रही थी कि उनसे क्या बात करे।

"पर मैं हैरान हूं, इनको समझौते में मिला क्या है?" एक अफसर
ने कहा।

वह खामोश, बिट-बिट, उनके मुंह की ओर देख रहा था।

"नई बात तो इसमें कोई नहीं," दूसरे अफसर ने कहा।

"चलिए, उनकी भी इज्जत रह गई, हमारी भी इज्जत रह गई।"
बूढ़े संतरी ने राय दी और फिर पुलिस वाले चल पड़े।

कुछ देर, और दफ्तर में काम आम दिनों की तरह शुरू हो गया।
घंटियां बज रही थीं। चपरासी फाइलों को ला रहे थे, ले जा रहे थे।
टेलीफोन खड़कने लग गए।

शाम को जब डायरेक्टर घर जाने के लिए उठा, तो हर रोज की
तरह उसका पी० ए० साथ हो लिया। हर रोज की तरह चपरासी ने
मोटर का दरवाजा खोला। पी० ए० ने दफ्तरी कागज मोटर में रखे। गेट
से निकलते समय चौकीदार ने डायरेक्टर की मोटर को सैल्यूट मारा,
जैसे वह रोज करता था।

पहले अपने-आपको ढूंढ़

आखिर किसी न किसी तरह मैं अपनी सीट पर टंग गया। मेरे साथी बार-बार मुझसे कह रहे थे, "आप लेट जाएं, आराम करें।" मैं टुकुर-टुकुर उनके मुंह की ओर देख रहा था। इस तरह के हालात मे भी कोई आराम कर सकता है!

हमें यह बताया गया था कि आपकी सीटें आरक्षित है। क्योंकि तीन-टियर के डिब्बे मे भीड़-भाड़ ज्यादा होती है, इसलिए दो-टियर के डिब्बे को तरजीह दी गई थी। कान्फ्रेंस के संयोजकों ने टिकटें और उनसे सम्बन्धित आरक्षण-पर्चियां हमें भिजवा दी थीं। हम चार साहित्यकार थे जो दिल्ली से जालधर के इस कान्फ्रेंस मे शामिल होने के लिए जा रहे थे।

स्टेशन पहुंचकर हमने देखा कि गाड़ी प्लेटफार्म पर लग ही रही थी। हौले-हौले सरकते हुए डिब्बे चले आ रहे थे। लेकिन गाडी तो पहले ही ठसाठस भरी हुई थी। मुसाफिर खिड़कियों और दरवाजों के साथ टंगे हुए थे। "ये लोग यार्ड में जाकर बैठ जाते हैं," कोई कह रहा था, "गाड़ी चलने से पहले स्टेशन के कुली चार पैसे ज्यादा लेकर इन्हें यार्ड मे ही रुकी हुई ट्रेन मे जा बिठाते है।"

चाहे सीटें रिजर्व थीं लेकिन उन्हे ढूढ़ा कैसे जाए? सीटों के नंबर और मुसाफिरों के नाम की सूचियां हर बोगी के बाहर चिपकाई हुई थीं। और गाड़ी इतनी लम्बी थी, जैसे शैतान की आंत हो। एक सिरे से ढूढते-ढूढते मेरे साथी जब गाड़ी चलने वाली थी तब कही अपने डिब्बे को ढूढ पाए।

अब सवाल यह था कि डिब्बे में घुसा कैसे जाए? डिब्बा ऐसे लग

रहा था जैसे भुस-से भरी गाड़ी हो। और अभी तो अनगिनत लोग, बाहर प्लेटफार्म पर खड़े, अन्दर घुसने की कोशिश में थे। पायदानों पर खड़े मुसाफिर, आगे दरवाजे पर खड़े मुसाफिरों को धकेले जा रहे थे।

मैं खुश था कि गाड़ी छूट गई तो अगले दिन कान्फ्रेंस में लज्जित नहीं होना पड़ेगा। कान्फ्रेंस में शामिल होने का वायदा तो मैंने कर लिया था, मगर उसके लिए कोई विशेष चीज मैं नहीं लिख पाया था।

इतने में मेरे किसी साथी की नजर किसी रेलवे कर्मचारी पर पड़ी, और उसने उसे अपने आरक्षण-पर्चियां दिखाकर किसी न किसी तरह हमें डिब्बे में चढ़ा दिया।

चार में से केवल एक सीट खाली थी। खाली वह भी नहीं थी। यार लोगों ने अपना-अपना सामान उसपर टिकाया हुआ था। लेकिन रिजर्व सीट के मुसाफिर को देखकर अपना सामान हटाना शुरू कर दिया। और मेरे साथियों ने मुझे इशारा किया कि मैं उस सीट पर कब्जा कर लूं। बाकी सीटों को खाली कराने का वे प्रयत्न करने लगे।

इतने में गाड़ी चल दी। लेकिन सवाल यह था कि उस 'सीट' तक पहुंचा कैसे जाए? नीचे सीटों पर लोग एक के ऊपर एक चढ़कर बैठे हुए थे—मर्द, औरतें, बच्चे। यही हाल फर्श का था। या मुसाफिर थे या उनका सामान।

मुझे यों हतप्रभ देखकर मेरे साथी मेरी मदद के लिए बढ़े। एक ने कंधा दिया, दूसरे ने मेरी बांह पकड़ी, तीसरे ने पीछे से धक्का दिया और मैं किसीके सामान को, किसीकी टांगों को लताड़ता हुआ, लुढ़कता हुआ आगे बढ़ने लगा। आखिर किसी न किसी तरह मैं अपनी सीट पर टंग गया।

मेरे साथी बार-बार मुझसे कह रहे थे, "आप लेट जायें, आराम करें।" मैं टुकुर-टुकुर उनके मुंह की ओर देख रहा था। इस तरह के हालात में भी कोई आराम कर सकता है?

एक चीख-पुकार मची थी। कोई लड़-झगड़ रहे थे, कोई बहस कर रहे थे, कोई आवाजें कस रहे थे। कोई बीच-बचाव कर रहे थे, कोई शांत रहने के लिए समझा रहे थे, "रात ही तो काटनी है। गाड़ी में कोई बैठा

तो रहता नहीं है।" बच्चे रो रहे थे, मायें चीख रही थीं, पति पत्नियों को काटने को दौड़ रहे थे, औरतें अपने बच्चों को फटकार रही थीं, कोई फरियाद कर रहा था, कोई गालियां बक रहा था, कोई धौंस जमा रहा था, कोई अकड़ दिखा रहा था, जैसे मछली बाजार हो।

ऐसा लग रहा था कि टू-टियर के डिब्बे में, ऊपर की बर्थ को सोने के लिए रिजर्व किया गया था और नीचे की सीटों को केवल बैठने के लिए। और बैठने वालों के रेले के रेले डिब्बे में आ घुसे थे। कोई कह रहा था, यह सारा 'रश' दीवाली का है। शायद यही बात थी कि रेलवे वाले दखल नहीं दे रहे थे।

मेरी सीट पर अभी भी किसी और का सामान रखा था। मैं उसकी ओर परेशान-परेशान नजरों से देख रहा था कि सामने की निचली सीट से एक अधेड़ उम्र के लाला ने अपनी एक गठरी उठा ली। "माफ करना सरदार साहब ! ये दो 'बीबियां' आ गई तो हमें इनको बिठाना पड़ गया। औरत जात ! हमने सोचा, इस वक्त कहां जायेंगी। रात का समय है।"

"और फिर इन्हें कौन-सा दूर जाना है।" उसका साथी नीचे से बोल उठा, "इन्हें गाजियाबाद उतरना है।"

"हां-हां, हमें तो गाजियाबाद तक जाना है।" एक करारी-सी जनाना आवाज नीचे से समर्थन कर रही थी।

"आधा घंटा और बस, गाड़ी गाजियाबाद जा पहुंचेगी।" अब उसके साथ की एक सुरीली आवाज बोल रही थी।

और मैंने बाकी सामान वैसे का वैसा, अपनी बर्थ के एक कोने में पड़ा रहने दिया।

"हमें तो गाजियाबाद तक जाना है···आधा घंटा और बस···गाड़ी गाजियाबाद जा पहुंचेगी।" इन आवाजों की प्रतिध्वनि जैसे मेरे कानों में फिर सुनाई दी। और मैंने नीचे झुककर देखा, सचमुच कुबूल-सूरत औरतें थीं। चटाख-पटाख, सामने की सीट पर बैठे हिन्दू लाला और उसके साथी के साथ बातें कर रही थीं। बार-बार उनकी ओढ़नियां सिर से उतर-उतर जातीं। बार-बार वे अपने सिर को ढकतीं।

गाड़ी स्टेशन से तो चल पड़ी थी, लेकिन जमना के पुल पार आ

रुकी थी। पुल के उस पार शायद मरम्मत हो रही थी या फिर बेवक्त बाढ़ आई हुई थी।

गाड़ी के डिब्बे में बेपनाह शोर था। पर मुझे लगता जैसे मेरे कान नीचे हिन्दू लाला और उनकी मेहमान औरतों की बातों से एकसुर हो गए थे। कैसे वे लोग हंस रहे थे? औरतें नहले पर दहला, उन्हें जवाब दे रही थी। और फिर एक लाला ने मिठाई का डिब्बा खोला और वे लोग बर्फी खाने लगे। लाला लोग अपने दिन की कारगुजारी बता रहे थे, औरतें अपने खरीदो-फरोख्त का झूठ-सच कह रही थीं।

मेरे सामने, बर्थ पर एक नौजवान सरदार था, जैसे विदेशी लग रहा हो। वही बात निकली। कुछ देर के बाद मैंने सुना, वह नीचे बैठे अपने एक साथी से पश्तो में बात कर रहा था। और फिर आप ही आप मेरी ओर देखकर कहने लगा, "हम वापस काबुल जा रहे है। कुछ दिन हुए आए थे, यहा कोई काम मिल जाए। लेकिन यहा के व्यापारी तो हाथ नही लगाने देते। अफगानिस्तान में आजकल धधा करने का कोई ठिकाना नही। बडा मदा है। जब से बादशाहत गई है, वह देश तो जैसे गिरता ही जा रहा है। हमारा व्यापार दवाइयों का था। काबुल में हमारी दुकान है। कई पीढियों से हम अफगानिस्तान में बसे हुए है। लेकिन अब वहा काम करने का कोई स्वाद नही। बहुत कमाया, बहुत कमाया। कमाया भी और बरबाद भी किया। कोई बात नही, पैसा तो हाथ का मैल होता है...।"

"लेकिन यह बताइए कि अफगानिस्तान मे आजकल हालात कैसे है?" मैंने नौजवान सरदार से पूछा। मुझे उसके व्यापार में दिलचस्पी नहीं थी। "बुरे, बहुत बुरे!" पठान सरदार कह रहा था।

"तराकी बच जाएगा या नहीं? पिछले दिनों खबर आई थी कि वह अस्पताल मे बीमार पड़ा है।

"उसे तो खत्म कर दिया गया है। यार लोगों ने उसे गोली से उड़ा दिया।" नौजवान पठान कह रहा था, "अब किसी दिन खबर आएगी कि अस्पताल में उसकी मौत हो गई।"

"आप भारत कब आए?"

"कोई दो-चार दिन हुए हैं।"

"क्या आप सडक के रास्ते आए हैं?"

"नही, हवाई जहाज से! लेकिन मेरे साथी सड़क के रास्ते आए हैं।"

"क्या रास्ते मे उन्हें कोई तकलीफ हुई?"

"तकलीफ जैसी तकलीफ! कई जगहों पर बागियों ने उनपर गोली चलाई। रास्ते में एक किला तो बिल्कुल बागियों के कब्जे मे है। इनकी बस में आधी सवारिया मिलिशया की थी।"

"जभी तो शायद बचाव हो गया।"

"आप कहा जा रहे है?"

"जालंधर।"

"क्या जालधर बड़ा शहर है?"

"बहुत बड़ा। पंजाब के ज्यादातर अखबार वहा से निकलते है। रेडियो और टी० वी० स्टेशन जालंधर शहर मे है। जालंधर शहर व्यापार की बहुत बड़ी मंडी है।"

"हमारे लायक कोई काम वहा निकल आएगा?" नौजवान पठान सरदार की आंखों में एक चमक-सी दिखाई दी।

"आप जालंधर एक-दो दिन रुककर देख लें।"

"हमने सोचा, पहले अमृतसर किस्मत आजमायेंगे! वहां कोई दाव लग गया तो बढ़िया बात रहेगी। गुरु की नगरी में लोक-परलोक दोनो संवर जाएंगे।"

गाड़ी चलती जा रही थी, चलती जा रही थी। और फिर मैं ऊंघने लगा। मुझे नींद आ रही थी। डिब्बे मे शोर भी कुछ थम-सा गया था। मेरे साथी अपनी सीटें खाली करवाने में सफल हो गए थे। छका-छक··· धका-धक गाड़ी की लय में, मेरी पलकें मुंदती जा रही थी।

यह देखकर पठान सरदार लड़के ने बोलना बंद कर दिया था। उसने बातें बंद की और मुझे नीचे से लाला जी और उनके सामने बैठी औरतों की बातें सुनाई देने लगी। एक औरत अपना पानदान खोलकर उन्हे पान बना-बनाकर खिला रही थी।

"हाय! यह पान की गिलौरी तो अमृत का घूंट है।" एक लाला

शायरी कर रहा था।

"देखकर खाना···पान खिलाकर कई बार लोग···" मोटी तोंदवाला गोल-मटोल लाला सांवले रंग के पतले, लम्बे लाला को छेड़ रहा था।

"ऐसा पान खिलाकर···बेशक कोई लूट ले।" नौजवान लाला गहरी ठंडी सांस लेकर कह रहा था।

"यह हुई न बात !" दोनों औरतें एकस्वर में बोली।

और मुझे खयाल आया कि इन औरतों को तो गाजियाबाद उतरना था। गाजियाबाद तो कब का निकल चुका है। अब दोनों लाला सिगरेट पी रहे थे। औरतें पान खा रही थीं। पान खा रही थी और चबा-चबाकर बातें कर रही थीं। उनका सामान वैसे का वैसा मेरी बर्थ पर एक ओर पड़ा था। फिर मेरी आंख लग गई। मैं गहरी नींद सो गया। गाड़ी में सोना मुझे हमेशा अच्छा लगता है।

"यह फगवाड़ा है, फगवाड़ा !" गाड़ी फगवाड़ा स्टेशन पर रुकी थी। बाहर प्लेटफार्म पर गर्म चायवाला बता रहा था। मेरी आंख खुली। मैंने देखा नीचे दोनों लाला बैठे-बैठे सो रहे थे। "यह फगवाड़ा है, फगवाड़ा" सुनकर उनकी भी आंख खुल गई।

और भौंचक्के-से वे इधर-उधर देखने लगे। उनकी मेहमान औरतें जिन्हें अपने-आपको असुविधा में डालकर जगह दी थी, कहीं दिखाई नहीं दे रही थीं। मेरी सीट पर रखा उनका सामान भी नहीं था। यों उन्हें इधर-उधर झांकता हुआ देखकर, साथ की सवारी ने बताया, "वे तो लुधियाना उतर गई थीं।"

यह सुनकर सांवले रंग के लाला के ऊपर जैसे घड़ों पानी पड़ गया हो।

"चालबाज औरतें ! कहने लगीं, 'हमें गाजियाबाद जाना है।' मोटी तोंदवाला गोल-मटोल लाला बड़बड़ा रहा था, "और जब बैठने के लिए जगह मिल गई तो कहने लगीं, 'हमें भी जालंधर जाना है—आपके शहर।' '

"और उतर लुधियाना गई।" सांवले रंग का पतला, लम्बा लाला जल-भुनकर बोला।

इतने में जालंधर उतरने वाली सवारियां अपना सामान इकट्ठा करने लगी। मैं भी अपनी बर्थ पर बिछी चादर को समेटने लगा।

"मेरी एक चप्पल नहीं मिल रही।" सावले रग का पतला लम्बा लाला कह रहा था।

"पहले अपने-आपको ढूंढ़। तू भी कहीं है कि नहीं?" मोटी तोंद-वाले लाला ने चुपके से अपने साथी को याद दिलाया।

मैंने सुना और एकदम मेरी आंखों मे एक चमक-सी आ गई। यह तो कहानी थी। जालंधर की कान्फ्रेंस के लिए मुझे कहानी मिल गई थी।

जमना

जमना ने अपने बाप के गले पड़कर अपनी मन-मर्जी के लड़के से ब्याह कर लिया था। उसका मर्द शहर में किसी कोठी में बावर्ची था तो क्या, उसका बाप कौन-सा लाट साब था। सारी उम्र उसने खसरासोगीरी की थी। और अब रिटायर होकर घर बैठ गया था। जमना की मा मर चुकी थी। बाप दिन गिन रहा था। पाच उसकी बेटिया थी। एक से एक जवान। मन ही मन उसका बाप भी खुश था कि एक बला तो सिर से टली।

शादी तो करवा ली लेकिन जो बात जमना के बस से बाहर थी, वह था बच्चा पैदा करना। जमना हर हीला कर बैठी मगर वह मा नही बन सकी। डाक्टर, हकीम, वैद्य, दाइया, टोने, झाड़-फूक, व्रत-उपवास, तीर्थ-यात्रा, सब यत्न वह कर बैठी, मगर कोई सन्तान नही हुई थी। डाक्टर कहते, जमना के घरवाले मे कोई नुक्स नही था, अगर कोई नुक्स था तो वह जमना में था। जमना सिर पकड़कर बैठ गई।

"इसमे रोने-धोने की क्या बात है! अपना-अपना भाग्य होता है," उसका पति कहता, "अगर जमना बच्चा नही जन सकती तो उसे कोई काम कर लेना चाहिए।"

और कह-सुनकर, उसने जमना को एक कोठी में आया भरती करवा दिया। जमना खुश थी। फूल जैसा एक बच्चा उसे खिलाने के लिए मिल गया था। बच्चे की मा डाक्टर थी। सुबह जाती, शाम को लौटती। सारा दिन बच्चा जमना के सुपुर्द होता। बच्चे का मल-मूत्र साफ करना, बच्चे को नहलाना-धुलाना, बच्चे को पहनाना-सजाना, बच्चे को खिलाना-पिलाना, बच्चे को घुमाना-फिराना, बच्चे को थपकना-सुलाना, जमना को पता भी न चलता कब सुबह होकर रात हो जाती। नित्य बच्चे की नई हरकतें,

नित नये चोंचले, आज और कल कुछ और। जमना को अब कभी ध्यान भी नहीं आता था कि उसके अपना बच्चा नहीं था। खुशी-खुशी वह देर रात गये तक अपने घरवाले से बेबी की बातें करती रहती।

"तुम्हें पता है, आज क्या हुआ ?" एक दिन वह अपने घरवाले को बता रही थी। "बेबी की मां ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया, मगर बेबी मेरी गोद से उतरने का नाम नहीं ले रही थी। मा बार-बार उसे बुलाती और वह हंस-हंसकर मेरे सीने से चिपटता जाता। मेरी छातियों की सीढ़ी बनाकर, मेरी गर्दन, कंधों, सिर तक पहुंच जाता, लेकिन अपनी मां के काबू में नहीं आ रहा था। और बीबी अपना-सा मुह लेकर रह गई। मैं कहती हूं···।"

और जमना ने देखा कि उसका पति तो सो चुका था। उसके खर्राटों की आवाज सुनाई दे रही थी।

जमना सोचती, इसका घरवाला थक जाता था। उसका काम ही बड़ा कुत्ता था। सारा दिन रसोई में चूल्हे के सामने खड़े रहना होता।

काम तो इसका बढ़िया था। सारा दिन चाद जैसे सुन्दर बच्चे के साथ खेलना। उसे लाड़ करना। यह बात तो उसने अपने पति को कभी बताई नहीं थी। कई बार जब बेबी को भूख लगती, वह आप ही आप जमना की छाती को टटोलने लगता, और उसे गुदगुदी-सी होने लगती। या फिर बेबी का इसे गिराकर इसके ऊपर बैठ जाना, इसके मुह-सिर को नोचना, इसके चेहरे को इसके बालों से ढककर तड़ाक्-तड़ाक् थप्पड़ इसके गालों पर मारना, और खिलखिलाकर हंसते जाना। और बेबी इसे 'आया' कहकर थोड़े ही बुलाता था, वह तो इसे जमना कहकर पुकारता था। बेबी के घरवाले, सारे इसे जमना कहकर बुलाते थे।

कई बार जब बेबी को नींद नहीं आती थी तो वह तंग करने लगता। जमना गोल कमरे के कालीन पर सीधी लेट जाती और पखा खोल देती। बेबी उसकी छातियों के बीच सिर रखकर, देखतेही देखते सो जाता। यों बेबी को सुलाते हुए, कई बार उसकी अपनी आख भी लग जाती। बच्चे को यों इसके सीने से लगकर सोए हुए, साहब ने भी देखा था, बीबी ने भी। एक नजर देखकर दबे पाव कमरे से निकल जाते कि कहीं बच्चा कच्ची

नींद उठ न जाए।

जमना खुश थी, बहुत खुश।

फिर अचानक जैसे धरती उसके पांव तले से खिसक गई हो। सुनने मे आया इसका घरवाला और ब्याह करवा रहा था। इसकी सास पोते-पोती से खेलना चाहती थी। आखिर और कितनी देर वे इंतजार करते! इसकी सास कहती, "इतने बरस तो हम इसके मुंह की ओर देख-देखकर थक गए हैं।" इसकी सास की मर्जी थी तो कौन रोक सकता था! बड़ी दबंग औरत थी।

जमना का खाना-पीना छूट गया। सारी-सारी रात उसकी आंखों में कट जाती। बस, बेबी ही इसका एक सहारा था। लेकिन फिर भी जब सौत का इसे ध्यान आता, इसके तन-बदन में जैसे आग-सी लग जाती। इसके सीने मे कांटे चुभने लगते। कभी-कभी तो यहां तक सोचती कि इससे तो मर जाना ही अच्छा है। इस तरह के अपमान से तो कोई जहर फांक ले। कुएं में छलांग लगाकर डूब मरे।

कोई हीला कारगर नहीं हुआ। किसीने इसकी फरियाद नहीं सुनी। न भगवान ने, न किसी सगे-संबन्धी ने, न किसी अड़ोस-पड़ोस ने। इसका घरवाला बेपेंदे के लोटे की तरह, जिधर उसकी मां ने लुढ़काया, लुढ़क गया। बेहयाई की भी कोई हद होती है। अब इसके सिर पर सौत लाकर बिठाएगा, जो इसकी छाती पर मूंग दलेगी। रो-रोकर जमना की आंखें सूज गईं, लेकिन इसकी किसीने नहीं सुनी। आखिर स्वयं ही जमना को अक्ल आई। अगर इसके घरवाले को जरूर ही भख मारनी है तो इसकी छोटी बहन से ब्याह कर ले। कोई पराई आ धमकी तो इसे जूती में पानी पिलाया करेगी।

यह बात उसके घरवाले को भी मंजूर थी, और कम्बख्त सास की समझ में भी आ गई। जमना की छोटी बहन, देखने में अच्छी मुंह लगती लड़की थी। ऊंची-लम्बी, चाहे तो सात बच्चे जन ले, उसका कुछ बिगड़ने-वाला नहीं था।

और यों ही हुआ भी। जमना के मर्द ने इसकी बहन सरस्वती से ब्याह कर लिया। बला टल गई। मुश्किल से दो महीने गुजरे थे कि लड़की

को ग्रास लग गई। सब खुश थे। इसकी सास चुड़ैल के तो जैसे जमीन पर पांव नहीं लग रहे हों। क्या इसका मर्द और क्या इसके घरवाले, सरस्वती की खातिर करते न थकते। जमना को जैसे सबने ही भुला दिया हो।

जमना का कोई भी नहीं था, सिवाय बेबी के। इसे देखता तो वह खिल उठता। जब खफा होता और किसीके काबू में न आ रहा होता तो एक नजर जमना को निहारकर रोना भूल जाता। हसने-खिलखिलाने लगता। आजकल जमना प्राय. कोठी मे ही टिक जाती थी। आखिर उसके घरवाले की खोली मे रखा ही क्या था? वहा तो अब सरस्वती का राज था। लेकिन जमना को एक ही हौसला था। वह और कोई नहीं, इसकी बहन ही थी जिसने इसके घरवाले पर कब्जा कर लिया था।

तो भी यह विचार कि इसका घरवाला किसी और से प्यार करता था, कोई और नजरें थी जो उसे गर्माती थी, कोई और बाहे थीं जो उसके गले का हार बन-बन जाती थी, कोई और होंठ थे जिनको चूम-चूमकर वह झूमता होगा, और इसे जैसे चारों कपड़े में आग लग जाती। जैसे इसके आगे-पीछे अलाव जल उठे हों, और यह झुलसती जा रही थी।

एक बेबी था, जिसे यह देखती और इसके कलेजे में ठडक पड़ जाती। जैसे रिम-झिम फुहार पड रही हो।

लेकिन उस दिन तो जैसे इसकी जान ही निकल गई हो। इसकी नौकरी इसके हाथों से खिसक चली थी।

जमना की बुरी आदत थी। छोटी-छोटी चोरियां कर लेती। बीबी की कभी कोई लिपस्टिक उड़ा ली, कभी कोई कपड़ा इधर-उधर कर दिया, कभी बालो की सुइयों पर हाथ साफ कर लिया, कभी बेबी की टाफिया मुह में डाल ली। घरवालों के पैसे-गहनों को हाथ नहीं लगाती थी। हा, मेहमानों को जरूर थूक लगा देती। उनको पता भी लग जाता तो शर्म के मारे चुप्पी साध जाते।

उस दिन जमना ने बीबी की एक सहेली के बटुए में से पाच का एक नोट खिसका लिया। कोई बड़ी तेज औरत थी। उसने आगे देखा न पीछे, "आया", चीखकर जमना को अपने पास बुलाया और इसके ब्लाउज में हाथ

डालकर अपना नोट उसकी छातियों में से निकाल लिया।

जमना लाख कहती रही कि नोट उसका अपना था, लेकिन बीबी की उस सहेली ने दो थप्पड़ इसके मुंह पर लगाए और यह खामोश हो गयी।

सहेली के जाने के बाद बीबी ने जमना की खूब लानत-मलामत की। साहब तो ठोकर मारकर इसे निकालने पर तुले हुए थे। यह तो बेबी था, जिसने चीख-पुकार मचा दी और इसकी नौकरी बच गई।

उस दिन से जमना ने अपने कानों को हाथ लगाया कि फिर कभी यह किसी परायी चीज की ओर आंख उठाकर नहीं देखेगी। बेबी तो इसकी जान था। उसके लिए तो यह कोई कुर्बानी कर सकती थी। और जमना ने अपनी बुरी आदत से छुटकारा पा लिया। क्या मजाल जो कभी उसका मन डगमगाया हो। क्या मजाल जो कभी सपने में भी इसने चोरी की सोची हो। कई बार यों होता, इसके हाथ में से कोई छोटी-मोटी चीज जैसे छूट ही न रही हो। साबुन की टिकिया, पिन, बटन···लेकिन फिर इसे खिलखिलाकर हंस रहे बेबी का ध्यान आ जाता और यह अपने हाथ झटक देती।

यह नौकरी इसे बेहद प्यारी थी। और फिर नौकरी छोड़कर यह करेगी भी क्या? अपनी सौत के बच्चे का मल-मूत्र संभाला करेगी? चाहे इसकी बहन थी, लेकिन थी तो सौत। जमना सोचती और इसके मुंह का स्वाद कड़वा-कड़वा-सा हो जाता।

जमना ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद करती कि इसकी नौकरी साफ-सुथरी थी। खाने-पीने के लिए दोनों समय अच्छा-खासा मिल जाता था। तीज-त्यौहार पर बीबी उसे कपड़ा-लत्ता भी दे देती थी। यदि यह चाहे तो इसके रहने के लिए अलग क्वार्टर भी था। बीबी तो कई बार कह चुकी थी कि इसे कोठी में ही रहना चाहिए। कई बार बेबी रात को तंग करने लगता और किसीके काबू में नहीं आता था। जमना का क्या था, यह तो चाहे गैलरी में ही चटाई बिछाकर पड़ जाये।

अब, जब कि जमना का हाथ सुच्चा हो गया था, यह और की और हो गयी थी। हर समय खिली-खिली-सी रहती। इसे लगता जैसे अब

इसे किसीने कभी डाटा ही न हो। अब जैसे कभी इससे घर का नुकसान ही न हुआ हो। कभी किसीको कुछ याद कराने की जरूरत की नही पडती थी। हर काम अपने वक्त पर हो जाता था। हर काम ठीक-ठीक होता था। बेबी जैसे जमना का दीवाना हो। हर रात यही जिद् कि वह जमना के पास सोयेगा और यह उसे छाती से चिपकाए, कंधे से लगाए, गोद मे लिए, लोरियां गुनगुनाती हुई सुला देती और फिर उसकी काट में उसे डाल आती।

इतने दिनों से बेबी को पालते हुए, जमना को महसूस होने लगा था कि जब बेबी इसके पास होता तो इसके कलेजे में जैसे एक ठंडक-सी पड़ जाती हो। आगे-पीछे, हंस-खेल रहा बेबी इसे अच्छा-अच्छा लगता था। कई बार जब वह सो रहा होता तो इसका दिल बेचैन होने लगता। "जम्मां" कैसे प्यार के साथ इसे पुकारता था। यों तो इसे कभी किसीने नहीं बुलाया था। न मां ने, न बाप ने, न किसी बहन ने—न मर्द ने; तब भी नहीं जब वह इसके पीछे फिरता दीवाना-सा हुआ रहता था। बावर्ची! और फिर इसकी सौत के यहां लड़की हुई। लड़की हुई तो क्या था! जो मां बेटी पैदा कर सकती है वह बेटा भी जन सकती है। इसके सभी घर वाले खुश-खुश थे। इसकी बहन सरस्वती की लाख खातिरें होती थीं। बेटी एक की गोद से उतरती और दूसरा उसे उठाने के लिए तरस रहा होता।

तो फिर क्या? जमना की गोद में बेटा था। इसकी बहन की बेटी से कहीं ज्यादा सुन्दर, कहीं ज्यादा प्यारा। लेकिन वह तो किसीका बच्चा था! किसीका क्यों? इसका अपना था। उसकी मा ने तो बस, उसे अपनी कोख से जना ही था, पाला तो उसे जमना ने ही था। सारा-सारा दिन, ढेर रात गये तक बेबी इसकी गोद में रहता, इसके सीने से लगा हुआ इसके अंग का अंग! इसके प्राणो का प्राण!

लेकिन यों लगता जैसे बेबी और इसका साथ अब छूटकर रहेगा। इसके घरवाले ने रसोइये की नौकरी छोड़कर पान की दुकान खोल ली थी। कई उसके दोस्त इस धंधे मे वारे-न्यारे हो चुके थे। और जब से वह एक बच्ची का बाप बना, नौकरी की तनख्वाह से उसका पूरा नही पड़ता था।

ग्रौर ईश्वर की देन, उसकी दुकान ग्रच्छी खासी चल निकली थी। बीस-पच्चीस-तीस-पचास रुपये तक उसकी दिन में ग्रामदनी हो जाती। ग्रौर इसके घरवाले की मर्जी थी कि जमना उसके साथ दुकान पर बैठना शुरू कर दे। उसे मंडी में सौदा-सामान लेने जाना होता है। दिन में कई बार ग्रादमी को पेशाब करने के लिए भी उठना पड़ता था, ग्रौर दुकान को ग्रकेले छोडना ठीक नही था। इसका मर्द कहता, जितनी पगार जमना पाती थी, उससे कही ज्यादा उनकी बचत हो सकती है जो ग्रगर ये दुकान सारा वक्त खुली रखें। ग्रब तक तो जब कभी उसे बाहर जाना होता, कभी उसकी तबीयत ढीली होती, तीज-त्योहार वाले दिन इसके मर्द को दुकान बद करनी पड़ती थी। ग्राहक का थोडे ही पता होता है कि वह कब ग्रायेगा। ग्राहक ग्रौर मौत की क्या खबर कब ग्रा जाये! ग्रौर ग्राहक भी पान के। हर वक्त पान खाने का वक्त होता है।

जमना कई दिनो से उसे टाल रही थी, लेकिन ग्रब ग्रौर टालना संभव नहीं था। बात उसकी माकूल थी।

ग्रौर फिर ग्रपना दिल पक्का करके जमना ने नौकरी छोड़ दी। बेबी भी बडा हो रहा था। ग्रब उसे घर के बाकी नौकर भी संभाल सकते थे। ग्रौर कुछ दिन बाद वह नर्सरी स्कूल मे जाना शुरू कर देगा।

ग्राजकल जमना ग्रपने घरवाले की दुकान पर बैठती थी। पान बनाना कौन-सा मुश्किल है? दो दिन, ग्रौर इसने सारा काम सीख लिया। इस धंधे की सारी गुत्थियां इसे समझ में ग्रा गई। नौकरी के जमाने मे ग्रपना हाथ सुच्चा रखने की ग्रादत, क्या मजाल जो कभी बेवक्त जमना ने पान चबाया हो। एक पान सुबह ग्रौर एक पान शाम। इसका घरवाला तो हर समय कल्ले में पान दिए रहता था। जिस दिन से जमना ने ग्रपने घरवाले की दुकान पर बैठना शुरू किया था, उनकी ग्रामदनी दुगुनी हो गई थी। पैसों से संदूक भरी रहती। जमना इस शौक, इस सलीके से पान लगाती कि ग्राहक बार-बार ग्राते। जो एक बार ग्राता, फिर पान वहीं से खाता। सारे इलाके में इसके पान की धूम मच गई। लोग कोस काटकर जमना का पान खाने ग्राते। ब्याह-शादियों पर, पार्टियों के लिए, तीज-त्योहार वाले दिन सैकड़ो पान बना-बनाकर जमना ग्रौर इसके घर

चाला बेचते। जमना मसालों को कुछ इस प्रकार मिलाती कि ग्राहक उंगलियां काट-काटकर इसके पान खाते। पान नौजवान लड़के-लडकियों के लिए, पान ब्याहे हुए जोड़ों के लिए, पान अधेड़ो के लिए, पान बूढ़ो के लिए। जिस तरह का ग्राहक होता, उसी तरह का पान जमना लगाती। खास तौर पर सामने बस-अड्डे के ड्राइवरों के लिए ऐसे पान यह लगाती कि वे मस्त-मस्त गाड़ियों को उड़ाए लिए जाते। कुछ महीनों में उनकी दुकान जमना के पानों के लिए मशहूर हो गई। कमाई इतनी थी कि इसके घरवाले को हर रोज मंडी पान खरीदने के लिए जाना पड़ता था। कई-कई चक्कर उसे काटने पडते छालिया, चूना, कत्था इकट्ठा करने के लिए। यदि वह छालिया काटता तो जमना पान लगाती। यदि जमना सरौता संभालती तो इसका घरवाला पान लगाता। रुपयों की थैली भरकर वे हर रोज घर ले जाते। आजकल खोली छोडकर उन्होंने दो कमरों का एक साफ-सुथरा घर ले लिया था। एक कमरे में सरस्वती और उसकी चच्ची और दूसरा कमरा जमना का था। सारा दिन दुकान पर बैठी, काम करते थकी-हारी जमना अपने अलग कमरे में सोती थी।

पिछले कुछ दिनों से जमना की तबीयत कुछ भारी-भारी-सी थी। हर समय उसका जी मितलाता रहता। पहले तो इसने कोई ध्यान नहीं दिया, पर फिर इसने महसूस किया जैसे यह तकलीफ इसका पीछा ही न छोड़ रही हो। और हारकर जमना डाक्टर को दिखाने के लिए गयी। सामने सडक पर ही तो एक लेडी डाक्टर की दुकान थी। पान खाने की शौकीन। प्रायः आते-जाते लेडी डाक्टर जमना की दुकान पर रुककर अपने सामने पान लगवाकर खाती थी और साथ भी ले जाती थी।

उस दिन जमना का निरीक्षण करते हुए डाक्टर का रंग और का और हो रहा था। जमना हैरान होने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार, पूरे ध्यान से निरीक्षण करने के बाद, चारों ओर टटोलकर डाक्टर हसने लगी, "जमना ! तुम तो मां बनने वाली हो।" जमना ने सुना तो इसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। ग्यारह बरस इसे ब्याहे हुए हो गए थे। वह तो एक सूखी डाली थी। "मैं सच कहती हूं, सब निशानियां ठीक है," लेडी डाक्टर ने कहा, "तुम मां बन रही हो। तुम्हारे पेट में बच्चा

है।" जमना टुकुर-टुकुर डाक्टर के मुंह की ओर देख रही थी। अवाक्।
"मैं कहती हूं, और कुछ नहीं तो एक मीठा पान ही बनाकर मुझे भिजवा देना। कुछ महीने—और तुम्हारी गोद में बच्चा खेल रहा होगा!"

जैसे हवा में उड़ रही हो, जमना को पता भी न चला और वह एक नशे-नशे में अपनी दुकान पर पहुंच गयी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने घर वाले को कैसे बतायेगी! सारा दिन, हर पान जो जमना बनाती, पहले से अधिक मजेदार, पहले से अधिक स्वादिष्ट होता। इसके ग्राहक पास जा-जाकर इसको दाद देते न थकते।

नामुराद

जनक ने एक और मुसीबत पाल ली थी। बेकार औरत। फिर हिन्दू।' फिर पढ़ी-लिखी। फिर कलाकार।

एक शाम अपने कुत्ते को नहं सैर कराने के लिए निकली और उसने देखा कि उनकी कोठी के बाहर एक कुतिया बैठी हुई थी। दूध-सी सफेद, पतली-लम्बी; उनको देखकर पूछ हिलाने लगी।

शम्मी दौड़कर आगे बढ़ा और उससे दोस्ती करने लगा। इसने उसे सूघा, उसने इसे सूघा। इतने में वह आगे बढ गए थे। कुछ देर के बाद दौड़ता हुआ शम्मी उनके साथ मिल गया।

"हमारी शाली की शक्ल है," जनक ने अपने घरवाले से कहा। उसकी आवाज भर्राई हुई थी। इतनी देर खामोश रही थी। कुछ दिन हुए जाड़े में शाली मर गई थी।

"हा-हा, उस जैसी गोरी चिट्टी, पतली-लम्बी," उसके पति को भी शाली बहुत प्यारी थी। और फिर पति-पत्नी खामोश हो गए। शाली को बचाने के लिए उन्होंने इतनी कोशिश की थी, लेकिन उनकी एक नहीं चली। डाक्टर कहते, उसे निमोनिया हो गया था। जिस दिन वह मरी, वे लोग कितना रोए थे। उनकी जिन्दगी में यह पहली मौत थी उस घर में। और फिर कितने दिन शाली की कहानिया होती रही। हर बात में से उसकी बात निकल आती।

और अब यह पराई कुतिया शाली के रूप में जैसे उनकी जिन्दगी में घुस आई हो। हर शाम जब वे सैर के लिए निकलते, कोठी के बाहर गेट के पास वह प्रतीक्षा कर रही होती। उन्हें देखकर पखे की तरह पूंछ हिलाने लगती। और फिर शम्मी के साथ खेलती, उनके पीछे-पीछे सैर

के लिए चल देती। अजीब बात थी। पता नहीं किसकी कुतिया थी। पता नहीं कहां से आती थी। ऐसे उनकी प्रतीक्षा करती, ऐसे उनकी ओर प्यार-भरी नजरों से देखती कि दूसरा उसे लाड़ करने के लिए मजबूर हो जाता। फिर उन्होंने उसे शाली कहकर पुकारना शुरू किया। वह भी सुनकर इस तरह कान खड़े कर लेती जैसे सचमुच उसका नाम शाली हो।

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि एक शाम जब वह सैर के बाद लौटे शम्मी उनके साथ कोठी में नहीं आया। वह और शाली बाहर मेंहदी की बाड़ के पीछे छिप गए। जनक ने एक-दो बार शम्मी को बुलाया, वह सुनी-अनसुनी कर गया। प्रायः हर शाम यों होता कि सैर के बाद शाली ठीक गेट तक उनको पहुंचाकर कहीं खिसक जाती। और फिर सारा दिन नजर नहीं आती थी। शाम की सैर के बाद फिर बाहर बैठी प्रतीक्षा कर रही होती।

खाने का समय हो गया था, किन्तु शम्मी कहीं नजर नहीं आ रहा था। जनक ने बाहर बरामदे में जाकर उसे आवाज दी। कुछ देर के बाद शाली और शम्मी दोनों पूछ हिलाते अन्दर आ गए। जनक ने दोनों को रातब दिया। शाली ने पेट भरकर खाया और फिर कृतज्ञता में पूछ हिलाती हुई चली गई।

"पता नहीं किसकी कुतिया है। उसको वता नहीं देना चाहिए?" रात को सोते समय जनक ने अपने घरवाले को राय दी।

"चार दिन के बाद उन्हें खुद ही पता लग जाएगा। चांद चढ़े और चेटे जनमे कभी छिपे हैं?" उसके घरवाले ने बेपरवाही से कहा और करवट लेकर सो गया।

जनक को कितनी देर नींद नहीं आई। "मेरा नैहर छूटो जाए" सहगल के गाए एक दादरे के बोल उसके कानों में गूंज रहे थे। आंसुओं से भीगी आवाज। शहद जैसा मीठा दर्द।

अगला सारा दिन शाली कहीं नजर नहीं आई। शाम को फिर वैसी की वैसी अपने नियम के अनुसार गेट के बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। और पूछ हिलाती उनके साथ सैर को चल दी। सैर से लौटे तो इससे पहले कि शाली हर रोज की तरह गायब हो जाती, जनक ने शम्मी

के साथ उसको भी रातब खिलाया। दूध और डबल रोटी। जितना हिस्सा शम्मी को, उतना हिस्सा शाली को, बल्कि उससे ज्यादा।

और फिर जनक ने यह नियम बना लिया। हर शाम सैर के बाद शाली को खिला-पिलाकर भेज देती। वह भी जैसे अपना हक मान बैठी हो। रातब खाती, खातिर कराती और कही गायब हो जाती। किसीको नही पता था, कहा से आती थी, किधर जाती थी।

क्योंकि शाली को हर शाम खिलाना होता था, दूध की एक बोतल अधिक मगवानी पड़ती। नौकर को रोटिया भी अधिक पकानी होतीं। एक दिन इस फालतू काम के लिए नौकर को खीजते हुए देखकर जनक उसे समझाने लगी, "यह बिचारी मा बननेवाली है।" और उसके घरवाले ने बीच में टोककर कहा, "ना भई, शाली तो बीबी की बहू है, इसकी खातिर तो जरूरी है।"

और नौकर हंसने लगा। इसमें हंसनेवाली कोई बात नही थी। लेकिन हंसनेवाली बात तो थी। जनक शाली की वैसी खातिर करती जैसे उसके साथ कोई रिश्ता जोड़ा गया हो। जाड़े आए और जनक को यह चिन्ता खाने लगी—पता नही शाली कहा सोती है, पता नही वह जगह ढकी हुई भी है कि नही। उसके सोने के लिए नरम जगह होनी चाहिए। शाम को उसे इतना खिला देती कि सारा दिन चाहे उसे कुछ भी न मिले तो भी उसका गुजारा चल जाता। जब ठंड और बढी तो एक शाम सैर से लौटने पर जनक ने एक कोटी अन्दर से निकालकर शाली को पहना दी। शम्मी की और बात थी। उसके बाल चप्पा-चप्पा लम्बे थे। शाली के बाल पोर-पोर थे। उसे ठंड लगती होगी। सारा दिन जनक बैठी कोटी बनाती रही थी। अगले दिन जब शाली आई तो उसकी कोटी गायब थी।

"किसीने उतार ली होगी।" जनक कहती।

"नही, चाहे इसने खुद ही नोचकर फेंक दी हो," उसके घरवाले ने अंदाजा लगाया।

"हा, शायद इसको आदत नही होगी," जनक ने सोचा। और, अगली फुरसत में उसने एक और कोटी बनाई। इस बार अधिक बटन लगाए ताकि शाली के लिए कोटी को उतारना मुमकिन न हो।

बरामदे में धूप में बैठी जनक कोटी बना रही थी कि उसकी नजर साथ की कोठी की ओर जा पड़ी। शम्मी पड़ोसियों की कुतिया के साथ खेल रहा था। गर्दन में गर्दन, थूथनी के साथ थूथनी, एक-दूसरे को धकेलते-लताड़ते प्यार कर रहे थे। शीवा कद में शम्मी से ड्योढ़ी थी। उमर में भी बड़ी। यूं खेलते-खेलते जनक की सास ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। एक झटका और शम्मी और शीवा, शीवा और शम्मी...। जनक के पसीने छूटने लगे।

शाम को जब उसका घरवाला काम से लौटा, पहली बात जनक ने शम्मी के इस नये कारनामे की उसको बताई और वह हंस दिया। अब तुम्हें एक और कोटी बनानी होगी।

आजकल शम्मी शीवा के साथ फिरता था। जब मौका मिलता, साथ की कोठी की ओर खिसक जाता।

जब ठंड और बढ़ी तो जनक ने अपने पड़ोसियों को इशारे से कई बार बताया कि वह शीवा के लिए कोटी बनाएं, वह मां बननेवाली थी, पर वे सुनी-अनसुनी कर देते। और फिर एक दिन जब बारिश के बाद ठंड अधिक ज्यादा हो गई तो जनक ने एक पुरानी लोई को काटकर शीवा के लिए भी कोटी बना दी। उसका पति घर में नहीं था। जनक पड़ोसियों के जाकर चुपके से शीवा को कोटी पहना आई। शीवा भी यों जनक के सामने खड़ी होकर कोटी पहनाने लगी जैसे किसीने नाप देकर बनवाई हो। कोटी पहनाकर जनक कितनी देर शीवा की पीठ पर हाथ फेरती रही। उसकी थूथनी को सहलाती रही। अजीब रिश्ता था। पहले तो कभी वह आंख उठाकर भी इस कुतिया की ओर नहीं देखती थी। बल्कि एक बार जब उनके लान में वह पेशाब करने लगी थी तो जनक ने इस तरह उसे झिड़का था कि बेचारी वैसी की वैसी भाग गई थी।

आजकल शाली शाम को उनके साथ सैर करने के लिए नहीं जाती थी। शायद सर्दी ज्यादा हो गई थी। या फिर उसका पेट अधिक बढ़ गया था। उनकी सैर मीलों लम्बी होती थी। उस दिन सैर करके जब वे लौटे, सड़क पार करने के लिए वे इंतजार कर रहे थे कि पति-पत्नी ने पीछे मुड़कर देखा कि शम्मी एक गोली की तरह किसी आवारा कुतिया की ओर

दौड़ा। कुतिया हड्डियों का ढांचा थी। लहू-लुहान।

जनक को बेहद गुस्सा आया। बिना उसकी इंतजार किए वह अपने पति के साथ घर लौट आई। यों हर रोज वह अपने साथ शम्मी को सड़क पार करवाया करती थी। उस सड़क पर इतनी गाड़िया चलती थीं कि उसे हमेशा डर लगा रहता था। जनक के मुंह का स्वाद अजीब-अजीब-सा हो रहा था।

अंधेरा हो रहा था और शम्मी अभी तक नहीं लौटा था।

गोल कमरे में बैठे अखबार पढ़ते हुए उसके पति ने चिन्ता में डूबी हुई जनक से कहा, "मेरा ख्याल है अब तुम्हें एक और कोटी बनानी होगी।"

जनक खामोश थी।

"एक लोई तुम्हें और काटनी होगी," कुछ देर के बाद फिर उसने आहिस्ता से कहा।

जनक वैसी की वैसी खामोश थी।

"और अगले साल सर्दियों में कम से कम बारह कोटियां और तुम्हें बनानी होंगी। आखिर शाली, दीवा और इस आवारा प्रेयसी से चार-चार बच्चे तो होंगे। और फिर बच्चों के बच्चे, उनके बच्चे···"

"जाएं जहन्नुम में, नामुराद!" जनक ने कहा और अपने मुंह का कड़वा स्वाद थूकने के लिए चली गई।

अपना-अपना धर्म

हवेली के बाहर, चबूतरे पर लखन सुबह तड़के से बैठा है। और अब धूप निकल आई है। जो कोई हवेली के अंदर आता है, लखन को देखता है। नौकर-चाकरों को याद दिला-दिलाकर लखन थक गया है। अभी तक उसकी किसीने सुध नहीं ली। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। जब कभी वह आता, हवेली के द्वार उसके लिए खुले रहते थे। साहूकार का घर उसका अपना था। जब जी चाहे आए, जब जी चाहे जाए। उसे कभी किसीने नहीं रोका था। अब तो ड्योढ़ी का बंद दरवाजा उसकी ओर ऐसे घूर रहा था कि एक कदम आगे और उसको धकेल परे करेगा।

लखन सोचता है—साहूकार जी को क्या हो गया है? साहूकार के घर वालों को क्या हो गया है? बच्चे भी बाहर नहीं निकले। कैसे आकर उसे चिपट जाया करते थे। उसकी गठरी को टटोलकर जो कुछ भी तिल-फूल वह लाता था, छीन-झपट लेते थे।

और अंदर साहूकार को एक से ज्यादा बार बताया जा चुका है कि हवेली के बाहर लखन बैठा हुआ मुलाकात का इंतजार कर रहा है। साहूकार सुनाता है और चुप्पी साध जाता है। नौकर-चाकर याद करवा-करवाकर हटे, तो घर वालों ने उसे कहना शुरू कर दिया। साहूकार एक कान से सुनता है, दूसरे कान से निकाल देता है। फिर बच्चे साहूकार के पीछे पड़ गए। हवेली के फाटक के पीछे, ताक में से उन्होंने झांक लिया है। लखन के पास खट्टे-मीठे बेर थे और कई छोटी-छोटी सौगातें।

लेकिन पिछले कुछ दिनों से साहूकार के घर वालों पर कुछ इस तरह की पाबंदी लगाई थी कि किसीकी मजाल नहीं थी, किसी गुमाश्ते से कोई बात भी कर जाए। साहूकार का गुस्सा बुरा। आजकल तो हर समय वह

कहर में रहता है, जैसे अभी बरस पड़ेगा।

जिस दिन से सरकार ने देहाती कर्जों का कानून पास किया था, गुमाश्तों के नाम पर साहूकार जैसे काटने को दौड़ता है। किसीको मुंह लगाने के लिए राजी नहीं होता। और फिर आजकल मुश्किल से ही कोई गुमाश्ता उनके यहां आता। जिस दिन से शहर से नेता लोग आ-आकर उनके कान भरने लगे थे, लोगों की आखें बदलती जा रही थीं। और फिर एक प्रदर्शन में, साहूकार ने अपनी आखों से देखा था, कैसे लोग कूद-कूद पड रहे थे। अपने कानों से उसने सुने थे 'मुर्दाबाद' और 'जिन्दाबाद' के नारे। जैसे वे कच्चा खा जाएंगे उन सब लोगों को, जिन्होंने इतने दिन गरीबों को गरीब रखा। मुजारे से जमीन का हक छीना हुआ था। मकरुजों के कर्ज खत्म होने को नहीं आ रहे थे। फिर वही बात हुई। सरकार ने कानून पास कर दिया। गरीब देहातियों के सब कर्जे माफ हो गए थे। कोई लेन-देन नहीं, और तो और, जो मुकदमे कचहरियों में दायर थे, वे भी खारिज हो गए थे। डिग्रिया बेकार हो गई थी। साहूकार ने सुना तो उसके जैसे सोते सूख गए थे। उधर पाखाने होके लौटता, फिर चल देता। एक हाथ में लोटा, एक हाथ में कमरबंद। साहूकार का बुरा हाल हो गया था। उसे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता। जैसे अंधेरे की दीवारें खडी होती जा रही हों। लेन-देन बिलकुल खत्म हो गया था। न कोई अब कर्ज लेने आएगा, न वह इधर-उधर की हांकेगा, आजकल मंदे के दिनों पैसे कहां? आजकल तो रोटी चल जाए तो ईश्वर का शुक्र है। इस तरह की बेकार बातें। फिर उसका गुमाश्ते की जरूरत का अनुमान लगाना। फिर ब्याज का सौदा। गिरवी रखने के लिए लाए हुए जेवर के दाम आकना। और फिर वही में अंदराज। फिर गुमाश्ते का अंगूठा। फिर दो गवाहियां। फिर दस बार गिनकर रकम गुमाश्ते के हवाले करना। और फिर चलने से पहले दो-चार रुपये 'लाग' रखवा लेना—नौकर-चाकरों के चाय-पानी का खर्च।

इस धंधे का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू मुकदमेबाजी था। ज्यादातर कर्जों के लिए साहूकार को कचहरी चढना होता था। फिर दीवानी के मुकदमों में कई-कई साल लग जाते। सुबह घोड़ी पर सवार होकर साहूकार

निकलता और कहीं सांझ ढले लौटता। रास्ते में, घर के लिए सौदा-सुल्फ भी खरीद लाता। कम्मी—कामगरों की बंदगी लेता रहता। अफसरों को सलाम करता रहता।

अब तो सब कुछ जैसे ठप्प हो गया था। न कोई लिया हुआ कर्ज वापस करेगा, न कोई नया कर्ज लेगा। न किसीकी मियाद खत्म होगी, न किसीपर मुकदमा हो सकेगा।

सामने, खूटी पर टंगी माला के मनके आजकल साहूकार को जैसे घूरते रहते थे। उसे हर चीज जहर लगती। न खाना अच्छा लगता, न पीना। बेटे-बेटियों, हर किसीसे उसे चिढ़ आने लगी थी। जिन्दगी का ताना-बाना सिरे से ही बदल गया था। फालतू जमीन सरकार ने लेकर बांट दी थी। मुजारे पहले ही बागी हो चुके थे। अपनी-अपनी जमीन में हल चलाते, अपनी-अपनी खेती करते। और साहूकार को लग रहा था कि अगर उन्हें गांव में रहना है, खेती से अपना निर्वाह करना है, तो अब उनको हाथ मैले करने होंगे। अब उनको पसीना बहाना होगा। घर बैठे-बिठाए कोई उनके यहां दाने नहीं डालेगा।

लोग साहूकार को समझाते, हर गुमाश्ते से उसने मूल से कहीं अधिक ब्याज वसूल कर लिया है। अगर कर्जे मारे भी गए तो कौन कहर टूट पड़ा है! लेकिन साहूकार को यह बात बिलकुल समझ में न आती थी। जो धंधा उसका बाप करता था, उसके बाप का बाप करता था, आज कैसे वह सब कुछ गलत हो गया है? कहीं कोई खराबी जरूर है।

और अब सुबह से बाहर लखन बैठा है। साहूकार सुनी-अनसुनी कर रहा है। बेकार बहाने बनाएगा। समय बरबाद करेगा। साहूकार ने खुद अपने कानों से लखन को प्रदर्शन में नारे लगाते हुए सुना था। खुद अपनी आखों से उछल-उछल पड़ते देखा था। और खेतिहरों की तरह वह भी शहरी नेता की हां में हां मिला रहा था। और खेतिहरों की तरह वह भी अपना डंडा उछाल-उछालकर ऐंठ रहा था। एक से अधिक बार साहूकार ने लखन को यों करते देखा था।

अभी साहूकार फैसला भी नहीं कर पाया था कि लखन को कैसे टाले कि वह गठरी कंधे पर उठाए, दालान की ओर आता हुआ दिखाई

दिया।

"साहूकार जी ! बंदगी।" लखन ने दूर से ही कहा, "सुना है आपकी तबियत कुछ ढीली चल रही है······मैंने सोचा कि जाकर सुध-बुध ले आऊं।"

साहूकार ने लखन को कोई जवाब नहीं दिया।

"रब, झूठ न बुलाए साहूकार जी ! आप कमजोर बहुत हो गए हैं।" लखन ने चिंतित होकर कहा।

साहूकार अभी भी खामोश है।

"ये बेर हमारे बच्चे तोडकर लाए थे। और आपकी भौजाई ने ये सत्तू पीसे हैं। रात-भर चक्की चलाती रही। कहने लगी, साहूकार जी को सत्तू बड़े पसंद हैं।"

साहूकार अब भी चुप है।

"और फिर डाकिया भी कल ही आया। काके की तलब लेकर। कहने लगा, 'मैं छुट्टी पर था।' मैंने उसे समझाया, 'भई, यों न किया करो, हमें साहूकार जी की रकम तारनी होती है।' "

और लखन ने अपनी पगड़ी के फेंटे में बंधे हुए रुपये खोलने शुरू कर दिए है। साहूकार को अपनी आखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"लेकिन लखन······।" बाकी बोल जैसे साहूकार के होंठों पर सूख गए हैं।

"लेकिन लखन ! सरकार ने तो सारे कर्ज माफ कर दिए है।" पास खडे साहूकार के बेटे ने कहा।

"वह तो मुझे भी पता है। लेकिन हमारा भी तो कोई धर्म है। जो पैसे आपसे लिए उसे दूध से धोकर लौटाऊंगा, चाहे मैं लौटाऊं, चाहे मेरा बेटा।"

और लखन ने नोटों की गड्डी आगे बढकर साहूकार के सामने जा धरी है।

साहूकार हक्का-बक्का लखन के मुह की ओर देख रहा है।

"हमने अपना जवान बेटा फौज मे भरती ही इसलिए करवाया था कि साहूकार का कर्ज उतारना है। मेरा बाप नही उतार सका। मैंने

फैसला किया है कि आंखें मूदने से पहले आपका कर्ज उतारकर रहूंगा।"

साहूकार की नाक की नोक लाल सुर्ख हो रही है।

"मेरा बाप, तो सूद ही चुकाता रहा। मुझे अब मूल भी उतारना है।"

साहूकार का गला रुंध गया है।

"लेकिन लखन ! सरकार का कानून···।" साहूकार के बेटे ने कुछ कहना चाहा।

"ओ बादशाहो ! सरकार का कानून अपनी जगह, आदमी का धर्म अपनी जगह।" लखन ने टोकते हुए कहा। "रकम लेते वक्त हमने कोई सरकार को बीच में डाला था ?"

साहूकार की आखों में से आसू बहने लगे। जैसे उसके कपाट खुल गए हों। लखन की सादगी पर, लखन के ईमान पर साहूकार की आखों से युगों का छाया हुआ अंधकार जैसे छंट गया हो। और साहूकार ने अपने सामने से नोटों की गड्डी उठाकर लखन की मुट्ठी में रख दी है, "नहीं लखन, नहीं। मेरा भी तो कोई धर्म है। तेरा कर्ज कभी का उतर चुका है। तेरे बाप ने बैलों की जोड़ी के लिए पैसे लिए थे, वह उतारता रहा, तुम उतारते रहे, अब तुम्हारा बेटा···।" और बाकी शब्द साहूकार के गले में ही रुक गए।

और फिर साहूकार ने लखन के रुपये वैसे के वैसे उसकी पगड़ी में लपेटने शुरू कर दिए।

लखन की कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

फिर छली गई

जैसे झम-झम करती सुनहरी गेहूं की बाली हो। पतली और लम्बी। कही फूल-पत्तियो की तरह, कही मोती के दानों-सी। मेहंदी रंग की चुनरी में अपने-आपको लपेटे हुए। दूर, जामुन के पेड़ के नीचे, मुस्कानें बिखेरती, चमेली की तरह खिली, सामने से आते हुए उसने पहली बार उसे देखा। उसकी नजर जैसे उसपर जमकर रह गई। और फिर चलते-चलते जैसे वह समूची ही उसके भीतर समा गई हो। उनके रास्ते टकराए। वह अपनी राह आगे निकल गया और वह अपनी राह उधर चली गई।

दफ्तर मे बैठे हुए उसे वह सारा दिन अच्छा-अच्छा लगता रहा। सारा दिन उसके मुह का स्वाद शहद-सा मीठा-मीठा रहा। उसके अंग-अंग मे एक झनझनाहट-सी होने लगती। उसके कानो मे नगमे गूजते रहे। उसे लगता जैसे हल्की-हल्की धूप, खिड़की मे से, रोशनदान मे से चुपके-चुपके भीतर आ गई हो, जाड़े के दिनों में। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। जैसे उसके आगे-पीछे कोई नाच रहा हो। लाल, पीले, सुनहरी रंग उसके आसपास घुल-मिल रहे थे।

सारा दिन दफ्तर में उससे कड़वा बोल नही निकला। सारा दिन, उसने किसीमें ऐब नही निकाला। ठहरे हुए पानी मे, तैर रही मुर्गाबियों की तरह, फाइलें आती रहीं, जाती रहीं। न उसने बार-बार घंटिया बजाईं, न चपरासी को गैरहाजिर पाकर उसके माथे पर त्योरियां पड़ीं। उसे पता भी नही चला कि कब उसके हाथ का काम खत्म हो गया, और काम आया, वह भी निपट गया। और, और, और।

बार-बार उसकी आंखों के सामने, मेहंदी रंग की चुनरी मे लिपटी मुस्कानें बिखेरती वह बटोही आ जाती, और उसका अंग-अंग जैसे

सरशार हो जाता।

पंजाबिन लगती थी। शायद पंजाबिन ही होगी। हां, पंजाबिन थी।

और उस शाम अपनी पत्नी के साथ चाय पीते हुए कितनी ही देर वह अपने मन की कल्पित पंजाबिन के बारे में बातें करता रहा। उसका कद, उसका बुत, उसकी चाल, उसकी पलकों में मुस्कान, उसकी चुनरी। सबसे प्यारी वह उसे चुनरी में लिपटी हुई लगी। और उसकी सलवार के तंग पायचे। नीचे से घेरा कितना कम था, ऊपर से उतना ही फैला हुआ कुरता, सुच्चे रेशम का लगता था। अंग-अंग को उभार रहा। पंजाब के टीले, पंजाब के गढ्ढे। एक सलीका, कपड़े चुनने का, कपड़े पहनने का, कपड़ पहनकर चलने का।

और बिल्कीस, उसकी बीवी, बार-बार उसके मुंह की ओर देखने लगती। उसके होंठ जैसे मिश्री की चाशनी से जुड़-जुड़ जा रहे थे। पंजाबिन नहीं थी, लेकिन बिल्कीस खुद कितनी हसीन थी, जैसे कोई मुगल शहजादी हो। पराई औरत के हुस्न का जिक्र करते हुए उसे अपनी बीवी का अंग-अंग, जोड-जोड, अच्छा-अच्छा लगने लगता। उसकी हर अदा मोहिनी महसूस होने लगती।

अगली सुबह धरती पर नजरें जमाए, सोचते हुए, ज्यादा और चलते हुए कम, वह दफ्तर जा रहा था कि सड़क के किनारे, फुटपाथ पर अचानक उसने नजरें उठाईं, और देखा कि सामने वह थी, पंजाबिन। खुशबू। चमेली की कलियों जैसी मुस्कान। सुरमई रंग की चुनरी, सुरमई कुरता, सुच्चे रेशम की दूध-सी सफेद सलवार। एक नजर, और वह अपनी राह निकल गया, और वह अपनी राह। एक नशा-नशा, एक स्वाद-स्वाद, और वह अपने दफ्तर जा पहुंचा। उसने उसके बारे में और अधिक नहीं सोचा। संयोग की बात थी। एक के बाद दूसरे दिन किसीसे मुलाकात हो गई थी। किसी काम से उधर कहीं जा रही थी। उस दिन वह कुछ ज्यादा ही व्यस्त रहा। शाम हो गई। दफ्तर कभी का बन्द हो गया था। फिर भी वह अपने काम में व्यस्त था। यों भी दफ्तर में काम इतना होता था कि शायद ही वह कभी, दफ्तर की छुट्टी के बाद सीट छोड़ सका हो। उस शाम, खाने की मेज पर उसने अपनी पत्नी को बताया, "आज पंजाबिन

से फिर मुलाकात हो गई।" लेकिन इससे पहले कि बात आगे चल सकती, एक बच्चे ने अपना ही कोई किस्सा शुरू कर दिया। फिर दूसरा बोलने लगा। और बात आई-गई हो गई।

अगली सुबह, दफ़्तर जाते हुए, उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था, सचमुच सामने से वह आ रही थी। वैसी की वैसी, मुस्कानें बिखेरती हुई, एक फबन, एक हुस्न, एक अदा। आज वह उन्नाबी रंग की सलवार-कमीज पहने हुए थी। चुनरी का रंग सफ़ेद था। एक नजर, और उसकी आखें जैसे मुंद गईं। और फिर खुशबू बढ़ने लगी; बढ़ती गई, बढ़ती गई। और फिर खुशबू घटने लगी; घटती गई, घटती गई। वह अपनी राह निकल गई थी, वह अपने रास्ते चला आया था।

और फिर लगभग हर रोज उनकी भेंट हो जाती। कभी कहीं, कभी कहीं। हर रोज एक नया आकर्षण उसके पहनावे में होता। हमेशा सलवार-कमीज पहनती थी। सलवार-कमीज और ऊपर चुनरी। कभी किसी तरह की बुक्कल, कभी किसी तरह की। एक बांकपन, एक सलीका, एक फबन उसकी हर हरकत में से झांक रहा होता।

वह उसे बहुत अच्छी लगने लगी थी। जिन्दगी में जैसे एक नया नगमा उसे मिल गया हो, हर रोज जिसका एक दिलकश बोल उसके कानों में पड़ जाता। एक चित्ताकर्षक दृश्य, जिसकी एक झलक, और उसकी आखें सरशार हो जातीं; इससे पहले कि वह दफ्तरी झमेलों में उलझता।

दफ्तर में अपने साथियों के साथ, घर में अपनी पत्नी के साथ, प्राय: वह उस पंजाबिन का जिक्र करता रहता। खास तौर पर उसकी सुघडता की दाद देता रहता। सड़क पर जब वह उसे मिलती, उसकी आखें उसपर से हिल न सकतीं। जिस रोज किसी कारण उनकी मुलाकात न हो सकती, उसे लगता जैसे उसकी कोई चीज खोई-सी हो।

यों कई महीने बीत गये। जाड़े के दिन, गर्मी के दिन, पानी-वर्षा के दिन, बहार के दिन।

एक दिन शाम को वह दफ्तर से निकला ही था कि उसने देखा कि गेट से दस कदम की दूरी पर वह थी। हल्का-हल्का अंधेरा हो रहा था।

आगे-पीछे कोई नहीं था। सड़क जैसे सूनी-सूनी हो। हां, वही थी, पंजाबिन। उनकी नजरें मिलीं और वह खिलखिलाकर हंस दी, जैसे किसीको कभी से जान-पहचान हो।

यों किसी पराई औरत का, बिना जान-पहचान के, इस बेबाकी से हंसना उसे अजीब बदतमीजी लगी। और एकदम उसका चेहरा तमतमा उठा। उसकी नजरें एकदम धरती पर गड़ गईं और वह पसीना-पसीना होकर, तेज-तेज डग आगे निकल गया। पूरा रास्ता उसे अपना आस-पास मैला-मैला लगता रहा। जैसे एक घुटन-सी हो। एक उमस-सी। उसके मुंह का स्वाद कड़वा-कड़वा हो गया था।

और फिर घर पहुंचकर वह सब कुछ भूल गया। सामने उसकी बीवी बच्चों के साथ उसकी बाट देख रही थी। आज उसे दफ्तर में कुछ अधिक देर हो गई थी। कैसे दोनों बच्चे दौड़कर उसकी टांगों से लिपट गए थे। और उसकी बीवी, गोरी-चिट्टी, चमेली की बेल की तरह, सामने खड़ी, प्यार से कांप रही थी। यों ही ये लोग हर रोज उसकी राह देखते थे। जितनी ज्यादा देर हो जाती, प्रतीक्षा में उतनी ही ज्यादा विह्वलता।

वह दिन और आज का दिन। कई वर्ष बीत गए। उसकी उस पंजाबिन से फिर कभी मुलाकात न हुई। न सड़क पर, न और कहीं। उसको तो उसका कभी खयाल तक नहीं आया था।

लेकिन आज एक अजीब अनर्थ हो गया था।

वह एक सेमिनार में बैठा था। सेमिनार की कार्यवाही अभी शुरू नहीं हुई थी। आपसे-आप बैठा वह सेमिनार के कागज देख रहा था कि पीछे से किसीने आकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया :

"डाक्टर साहब!"

यह तो वही थी, पंजाबिन, मंद-मंद मुस्करा रही, खुशबू-खुशबू!

"माफ करना···" उसका चेहरा तमतमा गया।

"आप डाक्टर रशीद···" पंजाबिन का चेहरा एकदम बुझ गया।

"नहीं, डाक्टर रशीद तो सामने बैठे हैं···" उसने एक ओर कोने में बैठे एक प्रतिनिधि की ओर संकेत किया।

पंजाबिन का जैसे सारे का सारा लहू निचुड़ गया हो। एकदम वह नीली-पीली हो गई। फिर छली गई थी। वह तो फिर छली गई थी। और बिना उसकी पूरी बात सुने, वह अपनी सीट की ओर चल दी।

सेमिनार शुरू होने से पहले, सेमिनार के दौरान, उसने देखा, वह डाक्टर रशीद से मिलने नहीं गई। उसने तो नजर उठाकर, एक बार उसकी ओर देखा तक नहीं।

हां, एक से अधिक बार वह गुसलखाने गई थी। जितनी बार वह गुसलखाने से होकर लौटती, उसकी आखें जैसे और अधिक लाल हो रही हों। उसकी पलकें जैसे और अधिक नम, और अधिक भारी होती जा रही हों।

मीडिया

गोपाल में सबसे बड़ा गुण यह है कि वह चोर नहीं। उसके सामने सोना पड़ा रहे, क्या मजाल जो आख उठाकर उसकी ओर देखे। हमारे घर में ताले लगाने और चाभियां संभालने की किसीको आदत नहीं। सारा घर खुला रहता है—अलमारियां, स्टोर, ट्रंक, सूटकेस, नीमछत्तियां, तहखाने। घर के सभी लोग अपने-अपने काम पर निकल जाते है। बाद मे गोपाल की हुकुमरानी होती है। स्याह करे, सफेद करे। उसे इतने वर्ष हमारे यहां आए हुए हो गए है, क्या मजाल जो एक सुई भी इधर से उधर हुई हो। बल्कि दूसरे नौकरो के लिए एक मिसाल है—माली, जमादार, आया और मुड्डू।

मेरी हमेशा यह धारणा रही है कि गोपाल मे यह गुण कोई मामूली गुण नहीं। गोपाल हमारे यहा पच्चीस बरस से है। दोनों बच्चे उसके सामने पैदा हुए, उसकी गोद में खेले, पढ़े-लिखे, उनके विवाह हुए, बेटी अपने ससुराल चली गई है, बेटे के घर भी बेटी हो गई है। पच्चीस बरस कोई थोड़ा समय होता है!

मुझे याद है, पहली बार गोपाल जब हमारे यहां आया था तो वह मरियल-सा, मसकीन-सा हड्डियो का एक ढाचा ठिठुर-ठिठुर कर रहा था। हमने कहा, "तीस रुपये हम पहले नौकर को देते थे, इतने ही तुम्हें मिलेंगे।" हमारा पहला नौकर गाव चला गया था और लौटने का नाम नहीं ले रहा था। यों लगा, जैसे गोपाल को तीस रुपये मंजूर न हों। वह सिर हिलाकर चल दिया। अगले दिन देखा, तो वह खिड़की के बाहर खड़ा था। गोपाल हमारे यहा नौकरी करने के लिए राजी था। यह तो अच्छा ही हुआ कि हमने इस बीच किसी और से बात पक्की नहीं की थी।

पच्चीस बरस एक उम्र होती है। और जब कोई गोपाल जैसा गरीब हो, बाल-बच्चेदार हो। बूढ़े मा-बाप हों—देखभाल करने के लिए, तो यह उम्र काफी लम्बी प्रतीत होने लगती है। इतने वर्ष मुझे गोपाल का स्वाभिमान कभी नहीं भूला। कैसे उसने तीस रुपये स्वीकार करने से इनकार किया था और अगले रोज उसके चेहरे की बेबसी; जब उसने उसी पगार पर नौकरी करना कबूल कर लिया था।

"भई ! तुम अच्छी तरह सोच लो। तीस रुपये से ज्यादा हम नहीं दे पाएंगे।" मैंने उसे समझाते हुए कहा।

"सोच लिया साहब।" गोपाल ने जवाब दिया और मैं खामोश हो गया।

उन दिनों हमारी शादी हुए कोई दो बरस हुए थे। इन पच्चीस बरसों में, बढ़ते-बढ़ते गोपाल की तनख्वाह डेढ़ सौ रुपये हो गई है। गोपाल की मदद के लिए कई और नौकर काम करते हैं।

क्योंकि गोपाल से सोकर सुबह जल्दी उठा नहीं जाता, इसलिए मिल्क बूथ से दूध लाने के लिए किसी और से बात करनी पड़ी। सुबह-शाम दूध की बोतलें वह हमारे यहां पहुंचा देता। पहले लान में पानी भी गोपाल दिया करता था, अब उसे इसकी फुरसत नहीं होती। इसलिए थोड़ी देर के लिए एक माली को भी नौकर रखना पड़ा। कपड़े धोने के लिए एक माई सुबह-शाम आने लगी। सुबह कपड़े धोकर सूखने डाल जाती, और शाम को आकर उन्हें संभाल जाती। कपड़ों पर इस्तरी हमारे घर के बाहर, सड़क पर जामुन के पेड़ के नीचे, रेहड़ी जमाए बरेठन करती है। पोती को संभालने के लिए आया अलग है। घर की सफाई जमादार-जमादारिन की ड्यूटी है। इसके अलावा ऊपर के काम के लिए, दफ्तर के चपरासी हमेशा हाजिर रहते हैं, चाहे दिन हो या रात।

फिर भी गोपाल, पिछले कुछ अर्से से परेशान-परेशान-सा रहता है। पहले तो हमने सोचा, यह शायद इसीलिए है कि उसकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रहती। उसका निरीक्षण करवाया, पता लगा कि उसे टी० बी० की शिकायत थी। उसका अच्छे से अच्छा इलाज करवाया गया। अच्छी से अच्छी खुराक का प्रबंध किया गया। चार, छह महीने—और वह भला-चंगा हो

गया। लेकिन उसकी परेशानी वैसी की वैसी थी। फिर हमने सोचा, शायद उसके बीवी-बच्चे गांव में थे, और उनका विछोह उसे तंग करता है। इसलिए जब भी वह चाहता उसे अपने गाव चक्कर लगा आने के लिए हम मान जाते। एक महीना कहकर जाता, डेढ़ महीना लगाकर लौटता। हमने कभी परवाह नही की। दुधारू गऊ की लात भी अच्छी।

तो भी गोपाल की परेशानी में कुछ अंतर नहीं आया। सोच-सोचकर हमने उसे एक ट्रांजिस्टर ला दिया ताकि उसका मनोरंजन हो सके। यही बात थी शायद। ट्रांजिस्टर मिला और गोपाल खुश-खुश रहने लगा। सारा दिन रसोई में रेडियो बजाता रहता। सुबह सोकर उठता तो उसे चालू करता। रात को जब उसकी आंख लगती तो कही उसे बंद करता। हमने सोचा, यही बात थी। आदमी के लिए मनोरंजन बड़ा जरूरी है। रसोई में चाहे वह हो या न हो, रेडियो बजता रहता। कभी कोई गाना, कभी कोई नाटक, कभी कोई वार्ता।

"हर वक्त रेडियो सुन-सुनकर तुम्हारे कान नहीं पकते?" एक दिन मैंने गोपाल से पूछा।

"मनोरंजन होता है। आदमी के लिए मनोरंजन बड़ा जरूरी है।" गोपाल ने गढा-गढाया जवाब दिया।

और फिर वही बात हुई, और गोपाल ने शिकायत की, उसे चक्कर आने शुरू हो गए थे। हमने कोई विशेष ध्यान नही दिया। जब भी वह चक्करों का जिक्र करता, उसे कोई न कोई गोली दे दी जाती। कुछ महीने और, और जैसे गोपाल की बीमारी बढ रही हो। उसने शिकायत की, जब वह सडक पर चलता है, वह पांव कही रखता है और उसके पांव कहीं पडते हैं। उसने बाजार से सौदा-सुल्फ लाना बंद कर दिया।

हमें फिर चिंता हुई। उसे डाक्टर को दिखाया गया। उसकी आंखें टैस्ट करवाई गईं। ऐनक की जरूरत थी। उसे चश्मा लगवा दिया गया। तब भी कोई फर्क नही पड़ा। उसके दिमाग का एक्स-रे लिया गया। खून, पेशाब आदि की और जांच हुई। डाक्टरों की समझ में कुछ नही आ रहा था।

मेरा विचार था कि गोपाल को चक्कर इसलिए आने शुरू हो गए थे,

क्योंकि वह हर वक्त रेडियो सुनता रहता था। हर वक्त उसके कानों में आवाजें पड़ती रहती थीं। उसका दिमाग थका-थका रहने लगा था। डाक्टर लोग मेरी बात सुनकर हंस देते।

फिर हमने देखा, चक्करों के साथ, गोपाल का मिजाज भी चिड़-चिड़ा हो गया था। पहले वह परेशान रहता था, अब हम परेशान रहने लगे थे।

गोपाल में कई परिवर्तन हमें दिखाई देने लगे। जैसे पहले वह टेलीविजन कभी नहीं देखा करता था। "क्या सब लोगों के साथ बैठकर टेलीविजन देखा जाए!" वह दूसरे नौकरों से कहा करता था। अब उसने टेलीविजन के प्रोग्राम देखने शुरू कर दिए थे। दिन में जब उसे मौका मिलता, दूसरे नौकरों को रेडियो पर सुनी कहानियां सुनाने लगता। कई बार घर का काम करते हुए वह फिल्मी गानों की धुनें गुनगुनाने लगता। जब भी कोई नौकर उसे अपनी कोई समस्या बताता, तो गोपाल रेडियो पर सुनी किसी वार्ता या नाटक के आधार पर उसे सुझाव देने लगता।

जो सबसे बड़ी तबदीली गोपाल में आई थी, वह उसकी जबान का खुलना था। जो मुंह में आता, बक देता। न बड़े का ख्याल, न छोटे की परवाह। इतना पुराना नौकर, हम उसके मुंह की ओर देखकर हंस देते। न मेरी पत्नी को कभी बुरा लगा, न कभी मुझे। कभी तो यों महसूस होता जैसे गोपाल हमपर जान छिड़कता हो, कभी यों जला-कटा बोलता कि दूसरे का जी बुझकर रह जाता।

अभी-अभी खफा होकर वह गया है। जैसे डायलाग बोल रहा हो, "मेरा क्या बना है? पच्चीस साल से नौकरी पीट रहा हूं। कल मेरी आंख मुंद जाए तो मेरे बच्चे भूखे मर जाएंगे। मेरा क्या बना है? जो कमाओ सो खाओ। कमाना बंद हो तो भूखों मरो। हमारे गांव में आजकल बरफ पड़ रही है। मेरे बच्चे ठिठुर-ठिठुर करते होंगे। हमारी अपनी जमीन है, थोड़ी सही, मैं खुद जाकर जमीन की देखभाल करूंगा। थोड़ा सा लेंदे! पराधीन सपने सुख नाहीं। जो सुबह से आकर चूल्हे में सिर देता हूं... कब रात हो तो जान छूटे। यह भी कोई जिंदगी है! सबेरे की जूब। काम करते-करते मेरा अंग-अंग दुखने लगता है..."

मैं गोपाल के मुंह की ओर देख रहा हूं। ऐसे बोल रहा है जैसे यह सब कुछ उसने जबानी याद कर रखा हो। तोते की तरह रटे हुए डायलाग उगलता जा रहा है।

मैं हैरान हो रहा हूं, गोपाल को हो क्या गया है ? मेरी पत्नी मुझसे कहती है, "इस तरह बकने की इसकी आदत हो गई है। पहले भी कई बार इस तरह के डायलाग बोल चुका है।"

"क्या मतलब, तुम्हारे सामने भी इस तरह की गुस्ताखी कर जाता है ?" मैं हैरान होकर अपनी पत्नी से पूछता हूं।

"अब नौकर रखने का कोई जमाना नहीं रहा।" मेरी पत्नी बात को टालने की कोशिश करती है, "जब तक चलता है, आदमी को चलाए जाना चाहिए।"

इतने में रसोई में से गोपाल के बोलने की आवाज आती है, "कर भला हो भला। कर भला हो भला।"

"बूढा हो गया है कमबख्त !" मेरी पत्नी सुनकर कहती है।

"यह बात नहीं, यह रेडियो सुन-सुनकर ·····" और मेरी पत्नी के एकदम कान खड़े हो जाते हैं।

"हां ! हां ! यह 'कर भला हो भला' तो कल कोई टेलीविजन पर दिखाई फिल्म में बोल रहा था।

और फिर हम दोनों हसने लगते हैं।

यह और वह

मुस्कराती हुई काली-काली अंखड़ियां, खिला हुआ चौड़ा माथा, फूल-पत्ती से नाजुक होंठ, गेहुआं रंग; इसने उसे देखा और इसे लगा कि जैसे इसे भूख लग आई हो। यों आम तौर पर सुबह के वक्त नाश्ता करने को इसका जी नहीं चाहता था। हर रोज अम्मी से इसे डाट पड़ती। एक रोज तो सचमुच अम्मी ने एक हाथ से इसकी नाक पकड़ी और दूसरे हाथ से दूध का प्याला इसके गले में उंडेल दिया। लेकिन आज न जाने कैसे इसने अंडा भी खा लिया था, टोस्ट भी लिया था, दूध भी पिया था। सेब को दांतों से काट रही थी कि इसके स्कूल की बस आ गई, और यह नीले स्कर्ट और सफेद ब्लाउज में, अपने अम्मी को टा-टा करती हुई, दौड़कर बस में जा बैठी। एक हाथ से सेब खा रही थी और दूसरे हाथ में इसने चलते-चलते नासपाती उठा ली थी।

"आज इस लड़की को इतनी भूख कैसे लग आई!" इसकी अम्मी ने खुश होकर अपने-आपसे कहा। हमेशा उसे यही चिन्ता रहती थी कि उसकी बेटी को भूख नहीं लगती है। बाकी बच्चे खाने की मेज पर टूट पड़ते थे, लेकिन यह थी कि न किसी मिठाई, न किसी फल की ओर आख उठाकर देखती थी।

"यह साइकिल किसकी है?" फिर अम्मी की नजर, रसोई के पास, शहतूत के पेड़ के नीचे रखी एक पुरानी साइकिल पर जा पड़ी।

"सामने स्कूल के किसी बच्चे की है।" रसोइया बोला।

"किसी बच्चे की?" कोठी के बरामदे में खड़ी, एक हाथ से अपने लम्बे रेशमी बालों में कघी करते हुए अम्मी ने पूछा।

"जी, लाला जी ने कल हुक्म दिया था।" रसोइया बता रहा था।

इतने मे कोठी के पीछे से लाला जी स्वयं आ गए। "हाँ बेटी, मैंने ही कहा था। इन्कम टैक्स का इन्स्पेक्टर है न ! उसका बेटा सामने स्कूल मे पढता है। उसके साथी बच्चे बड़े शरारती है। हर रोज उसकी साइकिल या तो पक्चर कर देते है या उसकी हवा निकाल देते है। इन्कम-टैक्स इन्स्पेक्टर काम आने वाला आदमी है, मैंने कहा—बच्चा बेशक शहतूत के नीचे सुबह साइकिल रख जाया करे, छुट्टी के बाद, बाहर के बाहर आकर ले जाया करे।"

अम्मी सवाल तो कर बैठी थी लेकिन जवाब की तरफ उसने ध्यान नही दिया।

अंग्रेजी स्कूल, जिसमें यह पढती थी, इसकी छुट्टी कहीं पहले हो जाती थी। यह फिर बरामदे में खड़ी, सामने जामुन के पेड़ पर एक कौए और कलचिडी की झड़प का तमाशा देख रही थी कि वही सुबह वाला लड़का आया, साफ-साफ, सुथरा-सुथरा; एक हाथ के अंगूठे के नाखून को दांतों से कुतर रहा, हौले-हौले कदम, शहतूत की ओर गया, उसने अपनी साइकिल का ताला खोला और कूदकर साइकिल की काठी पर बैठ यह जा, वह जा हो गया। कोठी का आंगन, फिर गेट, गेट के बाहर ठंडी सड़क, दूर तक उसकी पीठ दिखाई देती रही। बेशक गर्मी के दिन थे पर उस दिन दोपहर को बार-बार इसे प्यास लग रही थी। इधर बरफ में लगी लैमनेड पीकर हटती कि फिर इसे प्यास लग आती। एक, दो, तीन, चार, पता नहीं कितनी बोतलें इसने पी होंगी ! फिर भी जैसे इसकी प्यास मिट नही रही थी।

उस रात, जब लाला जी खाना खाकर अपने कमरे में चले गए तो अम्मी अपने मियां से कहने लगी, "लाला जी अब बूढ़े हो गए है। किसी इन्कम टैक्स इन्स्पेक्टर के बेटे से उन्होंने कह दिया है कि अपनी साइकिल वह हमारी कोठी में रख जाया करें। हमारे घर स्कूल जाने वाली बच्ची है, मुझे अच्छा नहीं लगता किसी देसी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे का हमारे यहा आना। एक बार साईकिल रखने आया करेगा और दूसरे बार साइकिल लेने के लिए। और फिर यह एक-दो दिन की बात थोड़े ही है। कब लडका दसवां पास करेगा, कब उसका आना-जाना बन्द होगा। तब तक

हमारी लडकी जवान भी हो जाएगी।" अम्मी शिकायत कर रही थी कि बगल के कमरे में किसी कारणवश आई इसने सारी बात सुन ली।

उस रात, बहुत देर तक इसकी छाती में अम्मी के बोल चुभते रहे। इसे नहीं मालूम था कि यह इसे अच्छा-अच्छा लगा रहा था, इसे नहीं मालूम था कि यह इसे बुरा-बुरा लग रहा था।

अगली सुबह यह नहा-धो, स्कूल के कपडे पहन, फिर बरामदे में जा खडी हुई। हर रोज यह यों ही करती थी। उधर सामने स्कूल की घंटी बजी, इधर तेज-तेज साइकिल चलाता हुआ वह लड़का आया, सीधा शहतूत के नीचे गया, साइकिल से उतर, ताला लगाकर बस्ता उठाकर स्कूल की ओर निकल गया।

और यह खाने की मेज पर बैठी नाश्ता करने लगी। जितनी देर इसके स्कूल की बस नहीं आई, यह एक सास खाती रही। कभी कुछ, कभी कुछ। और फिर बस आई, एक हाथ में सेब, दूसरे हाथ मे नासपाती पकडे यह बस में जा बैठी। चकाचक सेब खाए जा रही थी कि इसके साथ की सीट पर बैठी बच्ची ने इसके कान में कहा, "तुम इतना खाओगी तो मोटी भैंस हो जाओगी। फिर तुमसे ब्याह कौन करेगा?"

इसने सुना और इसका चेहरा बुझ गया। सेब वैसे का वैसा इसके हाथ में थमा रह गया। यह सोच मे डूब गई। चुप-चुप, अच्छा-अच्छा, साइकिल वाले लड़के का चेहरा इसकी आखों के सामने तैरने लगा। और कुछ देर बाद, अधचबा सेब, और पूरी की पूरी नासपाती इसके हाथों से छूटकर नीचे जा गिरी। फिर बस स्कूल में पहुंच गई।

जवानी की दहलीज पर इसने पाव रखा ही था कि देश का बंटवारा हो गया। ये लोग लुट-लुटाकर, किसी न किसी तरह सरहद के पार पहुंच गए। इनकी कोठी, कारखाना, पैसा, कपड़ा-लत्ता सब कुछ पीछे रह गया। जिसने जो पहन रखा था, उन्हीं कपड़ों में फसादियों ने इन्हें खदेड़ दिया था। कल लाखों में खेलने वाले आज मिट्टी में मिल गए थे। इन्हें सिर छिपाने के लिए ठिकाना नहीं मिल रहा था। कितना ख्वार होना

पड़ रहा था। उन दिनों ये लोग नौकरों के एक क्वार्टर में ठहरे हुए थे। दूर-पार के एक सम्बन्धी ने इन्हें सिर छिपाने के लिए अपनी कोठी का नौकरों का क्वार्टर खाली करवा दिया था। कोठी में चार परिवार पहले ही टिके हुए थे। बंटवारे ने उथल-पुथल कर दी थी। कुछ दिन, और इसे पता चला कि सड़क के पार, सामनेवाली कोठी उनकी थी, उस साइकिल वाले लड़के की। उसका पिता, इस बीच इन्कम टैक्स का कोई बड़ा अधिकारी बन गया था। बंटवारे के कारण उसका तबादला इस शहर में हो गया था। लाला जी उसके पिता को पहचानते थे पर वह इतने शर्मिन्दा थे। शर्मिन्दा होने की बात तो थी ही। दस दिन उनके बच्चे ने अपनी साइकिल इनके यहां रखी होगी कि इसकी अम्मी ने उसे मना कर दिया था। लाला जी को बहुत बुरा लगा था। उस दिन वह खाना भी नहीं खा सके थे। लेकिन अम्मी की मर्जी जो नहीं थी और उसके उलट कोई नहीं चल सकता था। उस घर में इसकी अम्मी का राज था। अम्मी को किसी पुरानी खड-खड करती साइकिल का हर रोज अपने यहां आना गवारा नहीं था। एक मनभाती-सी सूरत कोई लड़का सुबह साइकिल रखने आता, तीसरे पहर उसे लेने आता। उनके घर अंग्रेजी पढ़ने वाली लड़की थी। अम्मी को किसी पराये लड़के का यों उनके यहां आना पसन्द नहीं था। डैडी सुन-सुनकर हैरान होते। लड़की तो अभी पांचवीं में पढ़ती थी। जैसे कोमल कच्ची कली हो। उधर लड़के के मुंह में जबान नहीं थी। आंखें नीचे झुकाए हुए आता और साइकिल रख जाता; आंखें नीचे झुकाए हुए आता और साइकिल ले जाता। अभी उसने आठवीं भी पास नहीं की थी। सुनते थे, बड़ा मेहनती लड़का है, अपनी क्लास में हमेशा अव्वल आता है। अगर तब इन्होंने यह बदतमीजी न की होती तो आज उनको कोठी में सिर छिपाने के लिए जा सकते थे। इतनी बड़ी कोठी में वे लोग अकेले रहते थे। पुरानी साइकिल वाला वह लड़का आजकल कार चलाता था।

कभी चिट्ठी डालने जाते हुए, कभी दूध लेकर आते हुए यह उसे एक नजर देख लेती। फिरकी की तरह अपनी कार घुमाए फिरता था। उनकी कोठी कितनी बड़ी थी! खुला लान, बहुत सारे कमरे, बरामदे, नौकरों के क्वार्टर, गैराज आदि।

इसे बार-बार अपनी अम्मी याद आती। बंटवारे से कुछ मास पहले अगर वह मर न गई होती तो आज देखती, पैसा हाथों का मैल होता। आज देखती, पश्चिमी पंजाब में महलों जैसी कोठियोंवालों का आज क्या हाल हो रहा था! सिर छिपाने को कहीं ठिकाना नहीं था। इनसे तो नौकरीपेशा अच्छे थे। उधर से इधर आए और खाली पड़े मकान उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उधर कुर्सियां छोड़कर आए तो इधर कुर्सियां उनके लिए खाली पडी थीं। उधर टेलीफोन छोड़कर आए, इधर टेलीफोन इनकी बाट देख रहे थे।

फिर कारवाले उस पडोसी लडके का ब्याह रचाया गया। कितने ही दिन उनकी कोठी बिजली के लट्टुओं से जगमगाती रही। कितनी गहमा-गहमी थी उनके घर में। मोटरें आ रही थीं, जा रही थीं। ढोलक बज रही थी, गीत गाए जा रहे थे। फिर शहनाइयों की गूंज। फिर वह घोडी पर चढकर गया एक सौ एक बैंड बाजे वालों के साथ। कितना बडा बारी जुलूस निकला था। अगली शाम वह डोली लेकर लौट आया। कहते थे, लडकी जैसे सुच्चा मोती हो।

जाड़े अभी गए नहीं थे। अभी हवा में ठंडक थी। अपने क्वार्टर की धूमिल शीशों वाली खिडकी के पीछे इसने देखा, उस शाम सामने कोठी की छत पर पहले एक दरी बिछाई गई, उसके ऊपर कालीन, फिर एक निवारी पलंग, गद्दे, तकिये, रेशमी रजाई। और फिर मच्छरदानी तानी गई। मच्छरदानी के चारों ओर चमेली की कलियों की पिरोई हुई लडियां लटकाई गईं। दुलहा-दुलहन की वह सुहाग रात थी।

और यह सोचती, रात को ठंड ज्यादा हो जाती है; सुबह-सवेरे घास पर इतनी ओस होती है, उनको चाहिए कि मच्छरदानी की छत पर एक पतली-सी चादर तान दें। इस तरह रात को ठंड से बचाव भी रहेगा और पूरे चांद की रात, चांदनी उनके पलंग पर रौनक भी बिखेरती रहेगी।···

यही सोचते-सोचते यह लेट गई। इन्हीं विचारों में डूबे हुए नींद ने इसे आकर दबोच लिया।

अगली सुबह, पहली बार यह जल्दी-जल्दी उठी और खिड़की में से

सामने कोठी की छत की ओर झांकने लगी। अभी तो दुलहा-दुलहन सोये पड़े थे। धूप निकल आई थी। उनके घर में, सब अपने-अपने काम पर निकल गए थे। इसने फिर खिड़की में से सामने छत की ओर झाका, अभी दुलहा-दुलहन सोये पड़े थे।

नल के पास बाहर, अकेली बैठी बरतन मल रही, यह आप ही आप बोल रही थी, 'अभी तो दुलहा-दुलहन सोये पड़े हैं।' और फिर इसे अपने-आपपर बड़ी शर्म आई। यह क्या बक रही थी।

अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि इसके डैडी ने एक छोटा-मोटा कारखाना इधर भी लगा लिया। अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि इन्हें पीछे छोड़ी जायदाद के बदले रहने के लिए इधर एक घर अलाट हो गया। दिन-रात, रात-दिन, इसके डैडी और बड़े भाई की मेहनत के कारण इनका कारखाना कहीं का कहीं पहुंच गया। जो घर इन्हें अलाट हुआ था, इन्होंने पहले उसकी मरम्मत करवाई। उसकी शक्ल और की और निकल आई। फिर इन्होंने उस घर में खाली पड़ी जगह पर और कमरे बनवा लिए। एक, दो वर्ष, और इन्होंने पुराने मकान को गिराकर नई कोठी खड़ी कर ली। अपने इलाके में इनकी कोठी सबसे अलग नजर आती थी। पहले ये लोग बस मे आते-जाते थे, फिर इन्होंने साइकिल खरीदे, फिर स्कूटर, और अब इनके यहां कार आ गई थी। पहले इसके बड़े भाई का ब्याह हुआ, अब इसकी बारी थी। इसके पिता ने, भाई-भाभी ने, कितने चाव से इसका ब्याह रचाया था। अम्मी जी नहीं थी। कितने दिन इनकी कोठी पर बिजली के लट्टू जगमगाते रहे। लड़का बेहद पैसे वाला था। वे लोग कोई बहुत बड़े प्रकाशक थे। किताबों का उनका व्यापार था। ससुराल के घर की गहमा-गहमी देखकर इसे बंटवारे से पहले अपनी कोठी की सारी शान भूल गई। इसके पति की कार अलग थी। शादी के बाद उसने अपनी मोटर दुलहन को दे दी और अपने लिए नई मर्सिडीज खरीद ली। "अंधा पैसा" हमेशा इसका पति कहा करता। जब से यह उनके घर आई थी, जब से इसने उनके आगन में कदम रखा था, उनके

न्यारे-न्यारे हो गए थे। वे लोग किताबें छापते भी थे, बेचते भी थे। कई विदेशी प्रकाशकों की उनके पास एजेन्सियां थीं। उनकी अपनी छापी हुई पुस्तकें विदेशों में बिकती थी। इसका पति मा-बाप का एक ही एक बेटा था। बड़ी दो बहनें ब्याही हुई थी। अपने-अपने घरों में राज करती थी। सास बूढ़ी थी। श्वसुर भी धीरे-धीरे व्यापार से हाथ खींच रहा था। ज्यादा समय उसका पूजा-पाठ में बीतता था। घर में बहुरानी का राज था। जो चाहे करे।

कभी आते-जाते, बाजार में, कभी सिनेमा में, इसे प्राय: वह दिख जाता। इसके बचपन की याद—पुरानी खड़खड़ करती साइकिल वाला वह लड़का।

आजकल वह सोचा करती—वह फिर पीछे रह गया। कभी वे लोग आगे निकल गए थे। नौकरों के क्वार्टर की धूमिल शीशों वाली खिड़की में से यह उन्हें देखा करती थी। अब तो यह उन्हें कोसों पीछे छोड़ आई थी। और फिर एक दिन इसने उसे देखा। वह उसी अपनी पुरानी कार में था। अब तो उसका रंग भी उतरने लगा था—मैला-मैला लग रहा था। और इसका पति था कि हर साल गाड़ी बदल लेता, हर साल नई कार। और फिर एक दिन उसकी मोटर इसके पास से गुजरी। इसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। हू-ब-हू इसके नौजवान ड्राइवर की शक्ल। उसीकी तरह बढ़ी हुई दाढ़ी, उसी जैसी नीली बुश्शर्ट, उसी जैसा धूप का काला चश्मा।

और इसे लगा जैसे इसका कद एक बालिश्त-भर ऊंचा हो गया हो।

बहुत दिन नहीं बीते थे कि एक शाम इसे अपने पति के दफ्तर जाना पड़ा। किसी दावत में इन्हें शामिल होना था और उसने कहा था कि यह उसे दफ्तर से ले ले। गहनों से लदी-सजी यह दफ्तर के बाहर गाड़ी से निकली तो इसे लगा कि इसके पीछे कोई पुरानी-सी कार आ रुकी हो। उतरा हुआ रंग, मैला-मैला गाड़ी चला रहे आदमी की भी

एक झलक—बढ़ी हुई दाढ़ी, नीली बुश्शर्ट, धूप का काला चश्मा। लेकिन इसने कोई ध्यान नहीं दिया। सामने दरवाजा खोले, चपरासी इसकी प्रतीक्षा कर रहा था। और खुशबू-खुशबू यह अपने पति के दफ्तर के लोगों का अभिवादन लेती उसके कमरे में जा घुसी। वह तैयार बैठा इसकी राह देख रहा था। इतने में उसके टेलीफोन के बजर की आवाज आई। टेलीफोन का चोगा उठाकर वह सुनने लगा। दूसरी ओर उसकी सेक्रेटरी थी।

"अच्छा वह खुद तशरीफ लाए है।" और एकदम टेलीफोन का चोगा वैसे का वैसा रखकर वह जल्दी-जल्दी कमरे से बाहर निकल गया। और अगले क्षण अपने आदरणीय अतिथि के गले मे बाहें डाले वह कमरे मे दाखिल हुआ। यह तो वही था—बढ़ी हुई दाढ़ी, नीली बुश्शर्ट, धूप का काला चश्मा। उतरे हुए रंग की मैली-मैली मोटर वाला।

"शम्मी! इनसे मिलो!" इसका पति कह रहा था, ये हमारे लेखक है—प्रदीप साहब! गजब के कलाकार हैं। इन जैसा आज हमारे देश मे कोई नहीं लिखता। इनकी जबान का जादू, इनकी कहानियों का गठन, इनके नये से नये पत्र पढ़-पढ़कर लोग दीवाने हुए जाते है।"

और फिर इसका पति अपने अतिथि के साथ बैठा इधर-उधर की बातें करने लगा। उसके पिछले उपन्यास के बारे में अखबारो में छपे रिव्यू। एक से एक बढ़कर। उसके नये उपन्यास के लिए खरीदा गया कागज, प्रेस का प्रबंध, उसके जैकिट का डिजाइन, और फिर उसके अगले उपन्यास का विषय, उसकी कहानी'''यह बार-बार अपने पति के मुंह की ओर देखती। वह शाम की दावत के बारे मे बिल्कुल भूल गया था। इतने में चाय आ गई। कितना तकल्लुफ! हर कोई मेहमान के लिए भाग रहा था। इसका पति तो जैसे उसके सामने बिछ-बिछ रहा हो।

और फिर यह मेहमान के लिए चाय बनाने लगी। कभी उसे कुछ खाने के लिए कहती, कभी कुछ। कितनी देर उसकी खातिर करती रही। इनकी अपनी दावत का समय कब का बीत चुका था।

कुछ देर बाद जब वह जाने लगा, इसका पति उठकर उसे मोटर तक पहुचाने के लिए गया। उसके साथ यह भी थी। इसने देखा, इसके पति

ने उसकी पुरानी उतरे हुए रंग वाली मैली-मैली कार का अपने हाथ से दरवाजा खोला। मोटर चली और हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया। जब उसकी गाड़ी आंखों से ओझल हुई तो उसे लगा जैसे उसका कद तो आसमान जितना ऊंचा हो। इतना ऊचा ! तोबा, तोबा!

"हमारी तरफ का लगता है।" फिर इसने अपने पति से कहा और इसका मुह जैसे मीठे शहद से भर गया हो।

ताजी की समस्या

उसे अजीब वेहूदा बीमारी हो गई थी। उसकी दाईं छाती के नीचे ढलान पर एक जगह सख्त हो रही थी। उसने महसूस तो किया, पर इसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। ध्यान देनेवाली बात ही कौन-सी थी। उसका मर्द बड़ा नटखट था। जब उसपर जनून सवार होता तो उसे कहा पता रहता कि वह क्या कर रहा है। फिर यह बात कहने वाली थोड़े ही थी! ताजी ने इस बात का जिक्र अपने घरवाले से भी नहीं किया। कई बातें जो वह उससे दिन में नहीं कर पाती, रात के अंधेरे में कर लिया करती थी। लेकिन इस बात का जिक्र करने से वह सकोच कर जाती। फिर उसने देखा कि सख्त जगह और सख्त होने लगी थी जैसे पत्थर हो। फिर भी उसकी झिझक ने उसे इजाजत नहीं दी कि वह इसके बारे में किसीको बताए। कुछ दिन बाद छाती के नीचे उस स्थान पर गिल्टी बनने लगी। गोल-मटोल, रीठे की गुठली की तरह। फिर वह और बढ़ने लगी। बढ़ती-बढ़ती एक लौकाट जितनी हो गई। यह देखकर ताजी घबरा-सी गई।

और उसने अपने पति से इसका जिक्र किया। उसने सुना और उसका रंग उड़ गया। यह तो बड़ी खतरनाक बीमारी हो सकती थी। प्रायः औरतों को हो जाती है। उसके एक दोस्त की बीवी को भी इस तरह से ही कुछ शुरू हुआ था और फिर बेचारी के पूरे स्तन को काटना पड़ा था।

और वह उसे शहर के सबसे बड़े दवाखाने में ले गया। सबसे बड़े डाक्टर से मुलाकात तय हो गई। उससे बड़ा विशेषज्ञ उस शहर में कोई नहीं था। लेकिन सवाल यह था कि पराये मर्द को पर्दानशीं ताजी अपनी छाती

दिखाएगी कैसे ? 'बेशक डाक्टर है, लेकिन है तो पराया मर्द···' ताजी सोचती।

ताजी ने अपनी जिन्दगी के पचास वर्ष बिता लिए थे और अभी तक उसने किसी पराये मर्द की ओर आख उठाकर नही देखा था, एक बार भी नहीं। मर्दजात उसकी जिन्दगी में आई थी, एक बाप की शक्ल में, भाइयों के रूप में, खाविन्द बनकर, और फिर बेटे जो उसकी कोख से जन्मे, उसकी गोद मे पले—जवान, ताजी से भी कही लम्बे।

पराये मर्द से हमेशा ताजी ने पर्दा किया था। कई वर्ष बुरका ओढ़ती रही। फिर उसने सोचा—पर्दा आख का होता है। उसने बुरका उतार दिया। लेकिन क्या मजाल जो ताजी ने अपने-आपको कभी शर्मिन्दा होने दिया हो। क्या मजाल जो कभी उसका मन विचलित हुआ हो। क्या मजाल जो कभी उसका पाव फिसला हो। पतिव्रता स्त्री का सत, पतिव्रता स्त्री का धर्म, पतिव्रता स्त्री की आख की लाज···एक लक्ष्मण-रेखा थी, जिसे लाघने का उसने कभी सपना भी नही देखा।

और अब यह कम्बख्त बीमारी; ताजी सोच-सोचकर परेशान होती रहती। अगर केवल गिल्टी ही होती तो शायद वह उसे अनदेखा कर देती। लेकिन कुछ दिनों से उसे उस स्थान पर एक पीड़ा-सी महसूस होने लगी थी। एक टीस-सी उठती, उसने सुना था कि इस तरह की गिल्टी कभी रसौली बन जाती है। ताजी सोचती, अल्लाह न करे इस तरह की कोई चीज हो गई तो वह उसे कैसे छिपा सकेगी!

डाक्टर के साथ एक मुलाकात वह टाल गई। दूसरी मुलाकात टाल गई। अब उसके घरवाले ने तीसरी मुलाकात तय करवाई थी। पहले मान जाती, लेकिन वक्त के वक्त उसे कुछ न कुछ हो जाता।

लेकिन इस बार डाक्टर के पास उसे जाना ही था। गिल्टी दिन पर दिन बढ रही थी, पीडा दिन पर दिन ज्यादा होती जा रही थी।

डाक्टर तजुर्बेकार था। एक पर्देदार औरत की परेशानी पहचानता था। ताजी ने जान-बूझकर उस दिन खुला ब्लाउज पहना था। निचली ओर से ब्लाउज उठाकर उसने डाक्टर को वह स्थान दिखाया जहा से टीस उठती थी। अपने घर, शृंगार-मेज के सामने खड़ी होकर वह कई बार

इसकी रिहर्सल कर चुकी थी।

एक नजर, और डाक्टर ने ताजी की बीमारी पहचान ली। उसे हाथ लगाकर भी गिल्टी को देखना नहीं पड़ा। डाक्टर की राय थी कि गिल्टी को चीरा देकर निकालना पड़ेगा, नहीं तो सारी की सारी छाती को खतरा हो सकता है। और चीरा भी जल्दी ही देना होगा।

अगले दिन ताजी को अस्पताल दाखिल करवाया गया। पहले दिन उसके टेस्ट हुए। दूसरे दिन उसे क्लोरोफार्म सुघाकर गिल्टी को निकाल दिया गया।

क्लोरोफार्म की सूघनी ताजी की नाक पर रखने तक वह वैसी की वैसी ढकी-लिपटी लेटी रही जैसी वह अपने घर से आई थी। उसका ढीला ब्लाउज वैसे का वैसा था। नर्स उससे इधर-उधर की बातें कर रही थी कि ताजी जैसे गहरे कुएं मे डूबती जा रही हो। और जब उसे होश आई, उसने देखा कि उसकी छाती पर दूध-सी सफेद पट्टियां लिपटी हुई थी।

आपरेशन कामयाब था। दो दिन और अस्पताल में रहकर ताजी अपने घर लौट आई। वह भली-चगी हो गई थी।

ताजी अल्लाह का लाख-लाख शुक्र करती कि उसकी आबरू बच गई थी। अल्लाह पाक ने उसकी पत रख ली थी। उसे शर्मिन्दा नहीं होने दिया था। ईसका सद्धर्म, उसकी आख की लाज, उसका पराये मर्द से पर्दा, जो मुसलमान औरत का फर्ज होता है, वैसे का वैसा बना रहा। बड़ा कठिन इम्तिहान था। ताजी को लगता, जैसे वह उसमें कामयाब रही हो। चाहे जवान बच्चो की मा थी, एक औरत कैसे अपनी छाती पराये मर्द को दिखाती, इससे तो कोई मर जाए। चुल्लू-भर पानी मे डूब मरे।

कई दिन बीत गए। अब ताजी को महसूस होता जैसे उसकी दूसरी छाती मे वही तकलीफ उठ खड़ी हुई हो। वैसी की वैसी एक जगह सख्त होनी शुरू हो गई। फिर उस स्थान पर गिल्टी बन गई। पहले रीठे की गुठली जैसी। फिर जैसे अच्छा-खासा लौकाट हो।

और टालना मुनासिब नहीं था। उसके घरवाले ने फिर पूछताछ की। पहले वाला डाक्टर तो रिटायर हो चुका था। उसकी जगह एक दूसरा डाक्टर विलायत से पढ़कर आया था। बड़ी ख्याति थी उसकी। जो आप-

रेशन उसके बाकी साथी घंटों में करते थे वह मिनटों में निपटा देता था। ग्रौर क्या मजाल जो कभी कोई गड़बड़ हुई हो।

सबसे बड़ी बात यह थी कि नया डाक्टर मरीज को बेहोश नहीं करता था। जिस स्थान पर ग्रापरेशन करना होता उस जगह इंजेक्शन लगा देता। मरीज बिट-बिट देख रहा होता ग्रौर डाक्टर चीर-फाड के बाद मरहम-पट्टी करने लगता। क्लोरोफार्म देने से एक तो मरीज को दुबारा होश में लाने में वक्त लगता था ग्रौर फिर प्रायः मरीज को मतली भी होने लगती। लोगों को ग्रक्सर कै होने लगती थी। ग्रौर कई बार पूरा-पूरा दिन मरीज की तबियत संभलने में नहीं ग्राती थी। कभी-कभी इससे भी ग्रधिक समय लग जाता।

लोग इस डाक्टर के नये ढंग से बहुत खुश थे। जिस दिन किसीका ग्रापरेशन होता, दो-चार घंटे ग्रस्पताल में ग्राराम के बाद वह घर लौट जाता। न ग्रस्पताल वालों के बेड रुके रहते, न रोगियों का फालतू खर्च होता।

लेकिन ताजी के यह सुन-सुनकर पसीने छूट रहे थे। ज्यों-ज्यों वह नये डाक्टर के ग्रापरेशन करने के इस ढंग के बारे में सुनती, उसका चेहरा पीला पड़ता जाता। ग्रौर फिर उसने ग्रपने दिल की बात ग्रपने घरवाले से कही। उसने ताजी की समस्या सुनी ग्रौर हंसने लगा। दीवानी ग्रौरत! डाक्टर से भी कभी कोई पर्दा करता है।

लेकिन ताजी की तसल्ली नहीं हुई। उसका खाना-पीना छूट गया। हर वक्त उसे यही चिन्ता खाए जा रही थी कि वह ग्रपनी छाती पराये मर्द को कैसे दिखाएगी। उसकी तो सास रुक जाएगी। उसके तो प्राण निकल जाएंगे।

"लेकिन पिछली बार जब ग्रापरेशन हुग्रा तो तुम्हारा मतलब है डाक्टर ने तुम्हारी छातियों को ढका रहने दिया था?" उसका घरवाला ताजी को समझाता।

बेशक, बेशक, लेकिन तब तो ताजी बेहोश पड़ी थी। इससे पहले कि नर्स ने ताजी के ब्लाउज के बटन खोले ताजी क्लोरोफार्म सूंघती हुई बेसुध हो चुकी थी ग्रौर जब उसे होश ग्राई, उसका तन-बदन ढका हुग्रा था।

"हकीकत तो यह है कि ग्रापरेशन करते समय डाक्टर को तुम्हारा ब्लाउज उतारना पड़ा था," उसका घरवाला उसे बार-बार याद दिलाता।

लेकिन ताजी को तसल्ली नही हो रही थी।

"बेहोश पडे ग्रादमी ग्रौर मरे हुए ग्रादमी में कोई फर्क नही होता। मुर्दे के साथ चाहे कोई कुछ करे।" ताजी ग्रपने जिद पर ग्रड़ी हुई थी। "इससे तो ग्रादमी मर जाए," वह बार-बार कहती। "इससे तो ग्रल्लाह किसीकी जान ले ले।"

ताजी सोचती, वह ग्रपनी ग्रांखें बन्द कर लेगी। लेकिन ग्रगर उसकी पलकें खुल गई तो वह देखेगी कोई पराया मर्द उसकी छातियो को निहार रहा है। चाहे वह डाक्टर ही क्यो न हो, पर है तो पराया मर्द।

ग्रौर ताजी ग्रपने ग्रापरेशन को टालती रही। कभी कोई बहाना, कभी कोई बहाना। कभी मेहमान ग्रा रहे होते। कभी मेहमान जा रहे होते। कभी जाड़ा, कभी बारिश।

फिर ताजी के घरवाले को किसीने बताया कि उसकी पत्नी को यों लापरवाही नही करनी चाहिए। यह कैंसर भी हो सकता है। इस तरह की गिल्टियां खतरे से खाली नहीं होतीं। ग्रौर उसका घरवाला हर रोज उससे बहस करने लगता। लेकिन ताजी थी कि टस से मस नहीं हो रही थी। खुली छातियां, कोई पराया मर्द उसे ताके, उससे देखा नही जाएगा। ऐसी हालत में उसकी जान निकल जाएगी। ऐसे भी वह मर जाएगी ग्रौर वैसे भी।

ग्रौर उनके घर ग्राठों पहर एक क्लेश-सा रहने लगा। पहले जिन्दगी-भर ऐसा कभी नहीं हुग्रा था।

ताजी हरगिज राजी नहीं हुई। उसका खाविन्द हारकर एक शाम डाक्टर के घर गया ताकि उससे माफी माग ले। इतने दिन से वह टेलीफोन पर ग्रप्वाइटमेंट ले रहा था। उनको ग्रागे बढ़वा रहा था।

डाक्टर की कोठी के बाहर लान में उसकी बुढ़िया मा टहल रही थी। हाथ में तस्बीह थामे। वह तो उनके ग्रपने गाव की थी। बातों-बातों में

उनका दूर-पार का रिश्ता निकल आया । बुढिया ताजी के खाविन्द को बार-बार आशीष दे रही थी कि तभी उसका डाक्टर बेटा बाहर निकला ।

"बेटा, यह तुम्हारा मामू है, चच्चा शेर मुहम्मद का बेटा ।"

और नौजवान डाक्टर ताजी के घरवाले को बड़े आदर से मिला ।

डाक्टर की मां उसे अन्दर गोल कमरे मे ले गई और कितनी देर खातिर करती रही । बात-बात पर डाक्टर उसे 'मामूजान मामूजान' कह-कर बुलाता । और जब भी ताजी का जिक्र आता, यही कहता, "मुमानी-जान से कहना फिक्र बिलकुल न करें । मैं दस मिनट लूगा । दस मिनट मे तो आपरेशन खत्म हो जाएगा और बाद दुपहर को घर लौट जाएगी ।"

ताजी के शौहर ने घर लौटकर डाक्टर के साथ निकले रिश्ते का जिक्र किया । ताजी ने सुना और खिल-सी गई । बार-बार उसका घर-वाला उसे याद दिलाता, "डाक्टर ने कहा है—मुमानीजान से कहना, फिक्र बिलकुल न करें । मैं दस मिनट···।"

और अगले दिन ताजी आपरेशन के लिए तैयार हो गई । डाक्टर कोई पराया मर्द थोडे था ! अपना भानजा था । भानजा बेटा होता है, भानजा भाई होता है । ताजी की झिझक तो पराये मर्द से थी ।

आई-गई हो गई बात

बेबी रो रही है, उसने अपनी ट्राइ-साइकिल की घंटी तोड दी है। घंटी बजती नही और वह रोए जा रही है। मै कहता हूं कि घंटी मैं ठीक कर देता हू। लेकिन वह मुझे घंटी को हाथ नही लगाने देती। घटी टूटी पडी है और बेबी एकसास रोए जा रही है।

मुझे कुछ समझ नही आ रहा। बेबी की मां काम पर गई हुई है। बेबी की आया आज नही आई। उसके घरवाले ने कल उसे फिर पीटा है। उसकी चीखें हमारे सोने के कमरे में सुनाई दे रही थी। अड़ोस-पड़ोस मे लोगों ने अब इसकी परवाह करनी छोड दी है, अब आधी रात को कोई दौड़ा हुआ इनके किवाड के बाहर नही आता। इनका तो नित का यह धंधा है। हर चौथे रोज आया का मर्द इसे पीटता है, इसे बेहाल कर देता है। इसके पिंडे पर लासें पड जाती है। आया में सकत होती है तो अगली सुबह काम पर आ जाती है नही तो पीड़ा मे बेहाल अपने क्वार्टर मे पड़ी रहती है।

एक बार तो उसने इसकी बांहें तोड दी थी। दारू पीकर घर लौटा और क्वार्टर मे घुसते ही उसने आया को पीछे से ठोकर दे मारी। पीठ किए हुए निश्चिन्त खड़ी आया चूल्हे पर औंधी जा गिरी और इसकी बांह की हड्डी चटक गई। कितने दिन इसकी बाह पर पलस्तर पुता रहा।

हम सब आया को बार-बार समझाते है, "तुम इस मर्द को छोड़ क्यों नहीं देती? जुआ खेलता है, दारू पीता है, सारा दिन बेकार फिरता है। जोरू की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाता है। फिर उसीको पीटता है। कोई बात भी हुई। अभी गिरे बेरों का कुछ नही गया, तुम इसे छोड़कर और ब्याह कर लो।" मेरी पत्नी उसे कई बार कह चुकी है, "और दो-चार

साल और तुममें कुछ नहीं रहेगा। फिर तुम्हें कोई नही पूछेगा। अभी वक्त है अपने बेहूदा आदमी से तुम जान छुड़ा सकती हो।"

बेबी ने वैसे का वैसा वावेला मचाया हुआ है। आया सुन तो रही होगी। इसके क्वार्टर तक बेबी की आवाज ज़रूर पहुंचती है।

लेकिन सुनने में आया है कि पिछली रात इसके मर्द ने आया को बड़ी बेरहमी से पीटा है। ठोकरें और लातें, थप्पड़ और मुक्के। और फिर कितनी गन्दी गालियां वकता है। इसके मा-बाप, बहन-भाई किसीको माफ नही करता। मजाल है, आया सामने से चू भी कर जाए। मजाल है यह कोई फरियाद भी करे। खामोश, रुई की गठरी की तरह यह उसकी मार खाती रहती है। बेजबान भेड़ की तरह उसकी गालिया सुनती रहती है।

हम इसे समझाते है, 'तुम हट्टी-कट्टी, ऊची-लम्बी कोठे का कोठा औरत हो, उस ठिगने-से मर्द से तुम मार खा लेती हो, तुम्हे शर्म नही आती? नशे में बदमस्त जब वह घर लौटता है, तुम उसे एक धक्का दो तो वह सीढ़ियों से लुढकता हुआ नीचे गली में जा पड़े। तुम्हे वह ठोकरें मारता है, तुम किसी दिन बेलन उठाकर उसकी मरम्मत कर दो।" आया सुनती है और जैसे अनसुना कर देती है। इसके कान पर जैसे जू तक न रेंगती।

बेबी है कि छल-छल आसू रोए जा रही है। काबू में नही आ रही।

रसोइया कहता है, "बेबी को बस आया ही संभाल सकती है। आया को ही बस इसे बहलाने का ढंग आता है।" और आया अपने क्वार्टर में औंधी पड़ी रो-रोकर बेहाल हो रही थी। हर बार इसे वह पीटता है। यह सोचती है, शायद इससे कोई कसूर हो गया हो। शायद इससे कोई गलती हो गई हो। आदमी से भूल हो ही जाती है। शायद इससे कोई गुस्ताखी हो गई हो। शायद खाने में कोई कसर रह गई हो। सारा दिन बेचारी बेबी की खिदमत करती है, मिट्टी के साथ मिट्टी होती रहती है। सुबह-शाम काम से समय निकालकर उसके लिए रोटी पकाती है। मजाल है, कभी देर हो जाए। बददिमाग आदमी, नाचता-टापता बाहर निकल जाता है। सारा दिन पता नही कहा-कहा झख मारता रहता है और पीछे उसकी पत्नी भूखी-प्यासी फाका करती है। किसीका मर्द भूखा हो तो उसकी

पत्नी कैसे मुह को लगा सकती है !

अजीब औरत है। बेबी रो-रोकर बेहाल है और यह अपने क्वार्टर में बैठी सुन रही है। बेशक आज उसकी छुट्टी ही सही, लेकिन बेबी को आकर बहला तो जाए। एक बार बेबी खामोश हो जाए, फिर बेशक क्वार्टर मे जाकर अपने-आपको सहलाती रहे। कभी कोई बहाना करती है, कभी कोई झूठ बोलती है, यह छिपाने की कोशिश करती है कि इसके मर्द ने इसे पीटा है, इसकी चमडी उधेड़ी है।

मैं फिर कोशिश करता हूं, आगे बढ़कर बेबी की घंटी ठीक कर दू। लेकिन बेबी और चीखने लगती है। घटी टूटी हुई है, न घटी की वह मरम्मत करने देती है, न रोना बद करती है।

जमादारनी बता रही है कि आया सुबह से रो रही है। उसके आसू बंद होने मे ही नही आ रहे। लहू के आसू रो रही है। उसके मर्द ने पिछली रात वैरियो की तरह उसे पीटा है। हर बार जब पीटता है, निर्दयता से पीटता है। लेकिन पिछली रात तो उसने जैसे इसे अधमरा कर दिया हो। पता नही, उसके हाथ में कैसे थापी आ गई और उसने इसका मलीदा कर दिया। इसका अंग-अंग नील-नील कर दिया। इसका पोर-पोर दुख रहा है। जोड़-जोड़ दर्द कर रहा है। बेचारी से हिला नही जा रहा है। सुबह से भूखी-प्यासी पड़ी है। मर्द तो इधर दिन निकला और बड़बड़ाता हुआ वह बाहर निकल गया।

अब उसे कभी मुह नही दिखाएगी, रसोइया कह रहा है। कल रात जैसे उसने इसे पीटा—अब आया कभी उसे क्वार्टर में नही घुसने देगी। आखिर क्वार्टर आया का है। नौकरी आया करती है। और किसीका घर होता तो चाहे वह ऐसे मर्द को अन्दर घुसने भी न देते। न काम न काज, बेकार मुस्टडा फिरता रहता है। आया बेचारी के माता-पिता पीछे गाव में है। शहर मे उसका कोई भी नही। कोई होता तो हर दूसरे दिन क्या उसको यों पिटते हुए देख सकता ? उसके मर्द की मरम्मत न कर देता ? मैंने तो कभी उसे मुंह नही लगाया। मनहूस शक्ल, जब माथे लगता है तो मेरा तो सारा दिन खराब हो जाता है।

बेबी ने रो-रोकर सिसकियां लेनी शुरू कर दी। रोने से घटी थोड़े

ठीक हो जाएगी। घंटी तो जुड़ेगी जब उसे जोड़ा जाए और बेबी है कि घंटी को हाथ नहीं लगाने देती।

"आया आ जाए तो बच्ची एकदम चुप हो जाए। लेकिन आया आए कैसे? वह तो कमर टूटी अपनी चारपाई पर पड़ी है।" जमादारनी बेबस हाथ मल रही है। "मैं पूछती हूं, इस औरत को अपने मर्द से लेना क्या है? हर रोज की पिटाई और बेइज्जती। इतने साल इन्हें ब्याहे हो गए हैं, एक बच्चा तक तो उससे पैदा नहीं हो सका। सब यही कहते हैं कि नुक्स इसके घरवाले में है, आया में कोई खराबी नहीं। कई बार तो बेचारी बड़े अस्पताल में अपना पेट दिखा आई। मैं तो कहती हूं, उसके मुंह पर थूककर और ब्याह कर ले। एक तो ढंग का आदमी इसे मिल जाएगा और दूसरे इसकी कोख हरी हो जाएगी। जिस आंगन में बच्चा खेलता हो तो औरत मर्द की क्या परवाह करती है! मैं तो बात-बात पर अपने घरवाले का मुंह चिढ़ाती हूं। मजाल है, सामने से बोल भी जाए। बच्चे की मां घर की मालकिन होती है।"

मैं सोचता हूं, अब हम लोगों को इस आया की छुट्टी कर देनी चाहिए। नौकर को घर में क्वार्टर देने का लाभ ही क्या यदि वह वक्त-बेवक्त काम न आए। और फिर हर चौथे रोज ये लोग ऊधम मचाते हैं। हर चौथे रोज मार-पीट, चीख-चहाड़ा। अड़ोस-पड़ोस वाले भी क्या कहते होंगे! कुछ दिनों के बाद जब बेबी बड़ी हो जाएगी तो उसपर इस सब कुछ का क्या प्रभाव पड़ेगा! अच्छा तो यही है कि अभी से किसी और आया का प्रबन्ध हो जाए। आखिर बेबी की मां को नौकरी तो करनी ही है। बेबी के लिए आया की तो हमेशा जरूरत रहेगी। आया ढंग की होनी चाहिए। यह आया बेबी के लिए हरगिज मुनासिब नहीं।

बेबी टूटी हुई घंटी को देखे जा रही है और रोए जा रही है। उसके आंखों से अविरल आंसू बह रहे हैं।

"इस औरत की बात समझ नहीं आती।" रसोइया बता रहा है, "कोई मानता नहीं लेकिन यह सच है कि जिस दिन इसका ब्याह हुआ था उस दिन रात को भी इसके मर्द ने आया को पीटा था। पहले पीटा और फिर उससे माफियां मांगता रहा।"

"शादी से पहले भी इसे पीटा करता था।" जमादारनी कह रही है, "फिर भी इसने उससे ब्याह करवा लिया। हम सब इसे समझाती रहीं लेकिन इसने किसीकी नहीं सुनी।"

"कभी-कभार बेशक आदमी को गुस्सा आ जाता है," अब रसोइया बोल रहा है, "कभी-कभार मर्द हाथ उठा बैठता है लेकिन यह अनर्थ कभी नहीं सुना कि हर चौथे रोज मार-कुटाई करने लग जाए। औरत जात का कुछ तो लिहाज होना चाहिए।

"मेरे मर्द ने एक बार मुझपर हाथ उठाया था," जमादारनी बोल रही है, "मैंने उसको वह मरम्मत की कि उसने फिर कभी मेरी ओर आंख उठाकर नहीं देखा। कोई बात भी हुई! बिना कसूर किसीपर हाथ उठाने की किसीकी मजाल ही क्या?"

यदि बेबी यों ही रोती रही तो उसका गला बैठ जाएगा, बीमार हो जाएगी। कब से यह रोए जा रही है। इसके आंसू रुकने में नहीं आ रहे, *छल-छल बह रहे हैं।*

"औरत जात तो पूजा के लिए बनी है।" मुझे एक कवि के बोल याद आ रहे हैं, "औरत जात तो एक फूल की तरह होती है। ऊंचा बोल किसीने बोला तो वह मुरझा जाती है। इस दुनिया-भर के सुन्दर गीत औरत के लिए लिखे गए। जन्म-जन्मान्तर से सुहाने नगमे औरत के लिए गाए गए। जहां सौन्दर्य है वहां औरत है। जहां सलीका है वहां औरत है। जहां सुघड़ापा है वहां औरत है। जब औरत मुस्कराती है तो कलियां चटकती हैं। जब औरत हंसती है तो फूलों में रंग भर जाते हैं। जहां औरत ने होंठ हिलाए वहां बहारें उसके कन्धों में बिछ-बिछ जाती हैं।"

बेबी रो-रोकर सो गई है।

इतने में आया आती है जैसे झूल रही हो। सूजे हुए होंठ, काला-नीला चेहरा, रो-रोकर लाल हुई आंखें। मेरा जी चाहता है कि उसे डांटूं; अब आई है जब बच्ची सो चुकी है। रो-रोकर उसने बुरा हाल कर दिया। और आया एक नजर सोई पड़ी बच्ची की ओर देखकर गैलरी की धूप में बैठ जाती है। जैसे आपसे-आप ढेरी हो गई हो। जैसे उसकी टांगें जवाब दे गई हों।

"इतनी देर से बेबी रो रही थी···" आया बोलने की कोशिश करती है लेकिन उसकी आवाज जैसे रुक गई हो। उसके बोल जैसे उसकी पीड़ा में डूब गए हों। आया चुपचाप गैलरी मे बैठी है। अपने अंग-अंग को जाड़े की धूप मे सेंक रही हो। उसके जोड-जोड में से जैसे टीसें फूट रही हों। कुछ देर के बाद आया अपनी धोती को उठाकर एक टाग को देखती है। टाग पर नीली-काली लासें पडी हुई हैं, फिर आया दूसरी टांग को देखती है। इस टाग पर भी नीली-काली लासें पडी है। इतने में रसोइया चाय का एक प्याला उसे लाकर दे देता है। आया गर्म-गर्म चाय घूट-घूट पी रही है। कुछ देर के बाद जमादारिन आकर उसके पास बैठती है और उसकी टांगों को दबाने लगती है।

अपनी धोती के पल्लू को उठाकर आया अपने शरीर का कभी कोई अग देख लेती है, कभी कोई।

बेबी को सोया हुआ देखकर मैंने चुपके से उसकी ट्राइ-साइकिल की घंटी ठीक कर दी है। घंटी फिर बजने लगी है। इधर ट्राइ-साइकिल की घंटी बजती है उधर बेबी की आख खुल जाती है। अपनी ट्राइ-साइकिल की घटी की आवाज सुनकर वह खिल-सी जाती है।

मैं आया की ओर देखता हूं। वह अपनी पसलियों को सेक रही है, जमादारनी उसके अंग-अंग को दबा रही है।

रसोइया उसे नही कहता, वह अपने मर्द को छोड़ दे।

जमादारनी उसे नही कहती, वह और ब्याह कर ले।

मैं उसे नही कहता, कब तक वह इस तरह अपने मर्द की मार खाती रहेगी।

और फिर बात आई-गई हो जाती है।

प्यार कब्जा नहीं

जैसे किसी स्लेट पर लिखे हुए अक्षरों को मिटा दिया जाए। स्लेट कोरी थी। कौसर को लगा जैसे किसीने उसको लूट लिया हो। उसकी दुनिया एक हुजरा की तरह खाली थी। और उसके पसीने छूटने लगे। वह बार-बार आगे-पीछे देखता, जैसे किसीका कुछ खो गया हो। किसीकी भरी जेब जैसे खाली हो गई हो।

अचानक जैसे किसीके हाथ-पाव फूल गए हों। वह इधर-उधर देखने लगा। आखें फाड़-फाड़कर वह चारों ओर देख रहा था। बार-बार अपने भीतर झाक रहा था। अपनी सोच और अपने अनुमान पर जोर डाल रहा था। शबनम कहा थी ?

और कौसर का गला रुंध गया।

"शबनम !" अपने कमरे में अकेले बैठे हुए उसने पुकारा।

"आपने बुलाया था ?" कुछ देर बाद उसकी बीवी ने कमरे में आकर पूछा।

वह खामोश, खाली-खाली नजरों से उसकी ओर देख रहा था।

"मुझे यों लगा जैसे आपने आवाज दी हो ?" बेगम कौसर ने कहा और आटे से लथपथ हाथ वह फिर बावर्चीखाने में लौट गई।

बेगम कौसर को अपना मिया अजीब खोया-खोया-सा लग रहा था। प्राय: यों होता था। लेकिन आज वह अपने में कुछ ज्यादा ही डूबा हुआ नजर आ रहा था। पढ़ने-लिखने वाले लोगों में यह बीमारी होती है, उसने अपने-आपको समझाया और फिर घर के झंझटों में खो गई। बच्चों को तैयार करके स्कूल भेजना था।

कुछ देर, और उसके दोनों बच्चे आए।

'अब्बाजान ! फीस।" आज पहली तारीख थी। हर पहली को वह स्कूल की फीस ले जाया करते थे।

"फीस ?" कौसर ने हैरान होकर पूछा, जैसे उसे इससे कोई वास्ता ही न हो।

"अब्बाजान ! आज पहली तारीख है।" बड़ी बच्ची ने यों कहा जैसे किसी सोए हुए को जगा रही हो।

"हां, हा, पर फीस कहा ?" कौसर ने एकदम अपना सिर झटककर इधर-उधर देखा, जैसे उसकी समझ मे कुछ न आ रहा हो।

"अब्बा ! आपको चेक काटना है, कोई पैसे थोड़े ही देने है ?" उसके बेटे ने सोचा कि अब्बाजान शायद इसलिए परेशान हो रहे थे कि उनके पास नकद पैसे नही थे।

"हा-हा !" एकदम जैसे वह संभल गया हो। और कौसर ने सामने दराज में से चेकबुक निकालकर स्कूल के नाम बच्चों की फीस के चेक काट दिए।

मेवाड़ की हसीना पद्मिनी की एक परछाईं थी जिसे अलाउद्दीन ने आइने में देखा था। कौसर अपनी क्लास मे लेक्चर दे रहा था।

एक परछाईं ! उससे कहा गया था कि वह परछाईं को देख सकता है, साक्षात् पद्मिनी को नही। और खिलजी परछाईं पर मोहित हो गया। चित्तौड़ के किले में से निकलने के लिए उसके कदम आगे नही बढ रहे थे।

एक परछाईं ! दिन-रात वह परछाईं अलाउद्दीन को घेरे रहती। कभी परछाईं से भी किसीको तसल्ली हुई है ? और फिर बादशाह ! और फिर पठान !! चौदहवीं सदी की यह कहानी है।

पद्मिनी वास्तव मे श्रीलंका की एक सुन्दरी थी जिसने भारत को अपना देश बना लिया था।

सुन्दरी और सयानी, उसका संकल्प इस्पात की तरह सुदृढ़ था।

मेवाड़ के राणा की दीवानी और दूरदर्शी। राजपूत परम्परा के महान आदर्श उसकी पुतलियों मे झलकते थे।

उसका झम-झम करता बादामी रंग, गज-गज लम्बे-बाल, छरहरा

वदन, और छत जितने ऊंचे आत्मसम्मान से छलक-छलक रहा व्यक्तित्व, उसकी विशाल पलकों की कोर से झिलमिल करती निश्छलता की रोशनी, हिरणी-सी चाल, उसके तीखे नयन, सुराहीदार गर्दन, मृदु-कोमल होंठ, उसके गालों पर तृष्णातुर गड्ढे।

पद्मिनी के भीतर की हसीन औरत यह जानती थी कि दिल्ली-दरबार का इरादा क्या था। वह बार-बार कहती—वह खुद मेरे सामने आकर सिजदा क्यों नहीं करता। चित्तौड़ गढ़ के सयाने सोचते थे कि शायद शाहनशाह परछाईं से ही टल जाए। और बेचारी नारी! उसे जो कुछ बताया गया, वही करने के लिए तैयार हो गई। अपने सिरताज की रजा में राजी!

लेकिन मर्द जात, पठान बादशाह शीशे में महारानी की परछाईं देखकर कुलबुला उठा। उसकी आग और भड़क उठी। वह तो उससे कहीं ज्यादा हसीन थी, जितना उसे बताया गया था। वह तो जैसे सचमुच आसमान से उतरी परी हो। जन्नत की हूर थी वह। उसे तो वह पाकर रहेगा। पद्मिनी की परछाईं नहीं, बजाते-खुद पद्मिनी! वह तो उसे अपनी बाहों में देखना चाहता था। वह तो उसे अपने महल की जीनत बनाना चाहता था। वह तो पठान के अपने शाही खून में एक अलौकिक सौन्दर्य की बानगी पैदा करना चाहता था। उसके नयनों में नयन, उसके होंठो पर होंठ, उसके अंग के साथ अंग। और कुछ भी नहीं। दिल्ली के तख्त का मालिक, अपने कौल-इकरार भूल गया। वह तो पद्मिनी को अपने महल में देखना चाहता था।

चौदहवीं सदी के मेवाड़ की इस कहानी को वैसा का वैसा छोड़कर कौसर अपने स्टाफरूम में लौट आया।

'परछाईं से कभी किसीका मन भरा है?' कौसर का दिल बार-बार कह रहा था।

क्यों नहीं? इतने बरस उसने बिता लिए थे—केवल एक याद के सहारे। बस, एक सुहानी याद। और गुम-सुम अपनी कुर्सी पर बैठ कौसर को अपनी मोहब्बत की याद आने लगी। उसके मुंह में जैसे मीठा शहद

घुल रहा हो।

शबनम सबसे ऊपर की मंजिल में रहती थी, और वह शायद सबसे निचली मंजिल पर। इस तरह का प्यार भी कभी परवान चढ़ा है ? लाख वह अपने-आपसे इकरार करती, लाख वह अपने महबूब से वायदे करती, पर फिर उसका मन उसे झुठलाने लगता। उसका दिल कहता, यह घाटी उससे पार नही होगी। उसका घड़ा कच्चा था, कच्ची मिट्टी का। उसका मन कहता, जब तुझे तेरा मिर्जा घोड़े पर बिठाकर ले जाएगा; तुझे अपने भाइयो की मोहब्बत सताने लगेगी; और फिर किसीका तरकश बेर पर टागते हुए तुम अच्छी लगोगी ? उसका दिल उसे बार-बार याद दिलाता, जब कोई नहर निकाल ले आएगा, तो कोई शीरीं किसी फरहाद को निराश नही कर सकेगी; फिर तो कौल निभाना पडेगा।

और मां-बाप का हुक्म मानने वाली बेटी, उसने अपने मन को समझा लिया। आदमी को सीधे रास्ते पर चलना चाहिए, जो बीहड़ रास्ता चुनते है, उनकी जिंदगी बडी मुसीबतों से गुजरती है। कही झाड़, कहीं झखाड, कहीं टोले, कही गड्ढे, कही धूल, कही कीचड़, कही ठोकरें, कही फिसलन।

और उसका महबूब उसकी रजा में राजी था। उसे उस दिन का भय था, जब शायद उसे अपनी दिलनवाज की नजरों मे झूठा होना पडे। आकाश की उस सुन्दरी को वह धरती पर कहां टिकायेगा ? उसे तो अपनी दुनिया मे कोई स्थान उसके अनुरूप नही लगता था। वह खुद तो भूखा रह सकता था, प्यासा रह सकता था, उसे अपनी गुरबत के वीराने मे कहां रब्बार करेगा ?

उसने किसीको कहते सुना, 'प्यार कब्जा नहीं, प्यार पहचान है।' और आखें मूदकर उसने कब्जा छोड़ दिया। शबनम की पहचान को सीने से लगा लिया।

कितने ही बरस . कौसर ने उसकी याद के सहारे, उसकी परछाईं के सहारे काट लिए थे। एक पहचान और उसका प्यार अपने ठिकाने पर स्थिर था।

उसे अब जरूरत नहीं थी—सोने की तरह झम-झम कर रही वादामी रंग की वाहों की। उसे अब जरूरत नहीं थी—उसके कंधों पर एक आबशार की तरह गिर रहे लंबे-लंबे बालों की। उसे अब जरूरत नहीं थी—जादू लुटा रहे मतवाले नयनों की। उसे अब जरूरत नहीं थी—नगमे लुटाते उसके कोमल, नाजुक होंठों की। उसे अब जरूरत नहीं थी—उसके गालों पर तृष्णातुर गड्ढों की।

और प्यार की इस पहचान के सहारे, समय आने पर उसने शादी भी कर ली, लेकिन उसका प्यार वैसे का वैसा बना रहा। और प्यार की इस पहचान के सहारे, वह एक के बाद एक, दो बच्चों का बाप भी बन गया, लेकिन उसका प्यार वैसे का वैसा बना रहा। और प्यार की इस पहचान के सहारे उसने दुनियादारी के कई झमेले अपने सिर पर ले लिए, लेकिन उसका प्यार वैसे का वैसा बना रहा।

लेकिन उस दिन सुबह अचानक उसे महसूस हुआ जैसे कि वह लुट गया हो।

वह कहा थी, उसकी शबनम ?

कहीं भी नहीं।

इतने वर्ष बाद उसे उसकी शक्ल भी भूल गई थी। उसका मुंह कैसा था ? उसका माथा कैसा था ? उसकी आंखें कैसी थीं ? उसके कौन-से गाल पर तिल था ? उसका कद, उसका बुत, उसकी हंसी, उसकी तिरछी नजर, यह सब कुछ कहा था ? और वह बार-बार अपनी याद को टटोल रहा था। बार-बार अपनी आंखें बन्द करता, खोलता। वह कहां थी ? वह जो यादों के इस महल की मलिका थी, वह कहा चली गई थी ? उसका अन्दर खाली था, उसका बाहर खाली था।

और कौसर को लगा जैसे उसके यहा कोई सेंध लगा गया हो। उसके मन-मंदिर में से जैसे कोई उसके सनम को चुराकर ले गया हो। उसके दिल का पाक हरम सूना था, जैसे उसे कोई बुहार गया हो।

और यों सोचते-सोचते कौसर की आखें भीग-भीग जातीं। वह उम्र कोई इस तरह भावुक होने की थोड़े ही थी।

कौसर की समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने-आपमें क्या कहे ?

उस रात चौदहवीं सदी के मेवाड़ की उस दास्तान के बारे में कौसर फिर सोच रहा था। खिलजी ने फरेब का जाल बिछाया, और मेवाड़ के राणा को हिरासत में ले लिया। महारानी पद्मिनी ने सुना तो उसे चारों कपड़े आग लग गई।

जिस तरह खड़ी थी वैसी की वैसी वह पालकी में बैठकर पठान बादशाह को झुठलाने के लिए चल दी। उसके साथ कई और पालकियां थीं। एक राज्य की महारानी दूसरे राज्य के बादशाह से मिलने जा रही थी।

खिलजी के डेरे पर उसने उसके पहरेदारों को चौंका दिया। महारानी पद्मिनी बादशाह सलामत से मुलाकात करना चाह रही थी। पद्मिनी को अपने शिविर में देखकर पठान बादशाह के पांव जमीन पर नहीं लग रहे थे।

"पहले एक नजर मैं अपने पति से मिलना चाहूंगी," पद्मिनी की फरमाइश थी। इसमें खिलजी को क्या आपत्ति हो सकती थी? और अहलकार उसे वहां ले गए जहां राणा को बन्दी बनाकर रखा गया था।

महारानी अपने सिरताज से मिली और आंख झपकने की देर में वह घोड़े पर सवार होकर भाग निकले।

उनका पीछा किया गया। लेकिन पद्मिनी के साथ आई हुई पालकियों में छिपे हुए बहादुर राजपूत पठान सिपाहियों पर टूट पड़े।

पद्मिनी अपने प्राणपति को चित्तौड़ के किले में वापस ले आई।

पठान बादशाह ने किले को घेर लिया। वह तो परछाईं से टलनेवाला नहीं था। वह तो उसे बजाते-खुद पाकर रहेगा।

एक दिन, दो दिन, चार दिन, दस दिन; और कोई चारा नहीं था कि किले के दरवाजे दिल्ली के बादशाह के लिए खोल दिए जाएं।

लेकिन इससे पहले पद्मिनी जौहर रचाएगी। महारानी का यह पक्का फैसला था।

चदन की लकड़ियों की चिता रचाई गई। और अपने जमाने की सबसे हसीन औरत देखते-देखते आग की लपटों में एक अंगारा बन गई।

"नहीं, नहीं, नहीं," कौसर नींद में से चौंककर उठ बैठा, "शबनम को आंच नहीं आ सकती। नहीं, नहीं, यों कभी नहीं होगा।"

"प्यार कब्जा नहीं, पहचान है," उसके अन्दर से कोई पुकारकर कह रहा था, "मोहब्बत करनेवाले के गुनाहों की सजा महबूब को भुगतनी पड़ती है।" और कौसर बार-बार अपने कानों को हाथ लगाने लगता। बार-बार उसके होंठों से 'तौबा-तौबा' सुनाई दे रहा था।

और शबनम कदम-कदम चलती उसके गुनाहों के अलाव में लोप हो गई। कौसर बस उसकी पीठ को देखता रह गया।

गजब खुदा का

गजब खुदा का, राय बहादुर की कोठी की तलाशी हो रही थी। पुलिस ने बंगले को चारों ओर से घेर लिया था। तभी तो राय बहादुर के अलसेशियन यों काटने को दौड़ रहे थे। राय बहादुर की कोठी मे हर रोज पुलिस के और दूसरे सरकारी अफसर आए रहते थे। कोई उनके गर्म पानी के तालाब में नहा रहा है, कोई खाने की दावतो में शामिल हो रहा है। कहीं शराब के दौर चल रहे हैं। राय बहादुर की इच्छा थी—और सड़क चौडी कर दी गई, उसपर रोशनी के लिए ट्यूबें लगा दी गई। सामने खुले पड़े मैदान को पार्क मे बदल दिया गया। राय बहादुर की इच्छा थी—और सारी कालोनी से झुग्गियों को उठा दिया गया। झुग्गी-झोंपडी वाले सूअर पालते थे, और सूअरों के झुड राय बहादुर के बगीचे का सत्यानाश कर देते थे। रायबहादुर की इच्छा थी—और उनकी कोठी के सामने किसी न किसी बहाने संतरी तैनात रहता। राय बहादुर की इच्छा न होती तो उसे हटा लिया जाता। राय बहादुर की बहू-बेटियों के फैशन अड़ौस-पड़ौस के लड़के-लड़किया देखने के लिए उत्सुक रहते।

और पुलिस के सिपाहियो ने कोठी को घेरा डाला हुआ था। वही पुलिस के अफसर, जिन्हें इस कोठी में दावतों से फुरसत नही मिलती थी, तलाशी के वारंट लेकर आए हुए थे। वे राय बहादुर की आख से आख नही मिला रहे थे। और जब तलाशी शुरू हुई तो पुलिस की आखें खुली की खुली रह गई। मनों सोना, हीरे और मोती, सौ-सौ रुपये के नोटों की गड्डियों की गड्डिया। अलमारिया ठूस-ठूसकर भरी हुई। विदेशी बैंकों के हिसाब-किताब के कागज, देसी बैंकों मे लाकरों की चाबिया, उनमे रखे

जेवरों के ब्यौरे। एक कमरा तो तरह-तरह की विदेशी शराब से ही भरा हुआ था। एक दीवार से दूसरी दीवार तक ईरानी कालीन; किसी कमरे, किसी बरामदे का फर्श नंगा नहीं। बार-बार पुलिस के अफसर एक-दूसरे से कहते, "यह तो मालूम था कि राय बहादुर अमीर हैं, लेकिन इतने अमीर है, इसका इल्म नहीं था।" और इस सारे धन और सम्पत्ति का कोई हिसाब नहीं था। कोई कर नहीं भरा गया था।

जब राय बहादुर की तलाशी शुरू हुई तो उनके पड़ोस में सेठ जी के खलबली मच गई। जो हाल राय बहादुर का हो रहा था, थोड़ी देर बाद सेठ जी का भी होनेवाला था। सेठ जी का तो घर का व्यापार था। उन्होंने तो कभी इनकम टैक्स का हिसाब किताब रखा ही नहीं था। उधर राय बहादुर के तलाशी शुरू हुई, इधर पुलिस के एक सिपाही ने सेठ जी के नौकर को आंख मारकर सचेत कर दिया। और फिर कुछ देर बाद चुपके से वह आया और अपना इनाम खरा करके ले गया। दस हजार रुपया इस तरह की चेतावनी के लिए थोड़ा था, पंद्रह हजार होना चाहिए। सेठ जी की पत्नी ने जो कुछ उसके मुंह से निकला, देकर जान छुड़ाई। पुलसिया कहता, यह रकम वह अकेला थोड़े ही खाएगा! यह तो सारी पुलिस पार्टी में बांटी जाएगी। उसके हिस्से में तो कुल सौ-दो सौ ही आएंगे।

और पुलिस के संतरी की हिदायत के अनुसार, सेठ जी ने अपना सारा धन, सारा माल कोठी के बाहर भेजना शुरू कर दिया। संतरी कहता कि वह कोशिश करेगा कि उनके यहां तलाशी ही न हो लेकिन अगर कानूनी कार्रवाई करनी पड़ी तो उनके यहां एतराज वाली कोई चीज नहीं होनी चाहिए। सेठ जी ने घर के सारे गहने अपने ड्राइवर को दे दिए। वह कोठी में नहीं रहता था। ट्रंक भरकर वह ले गया। जब खतरा टल जाएगा वह का बंद ट्रंक वह वापस ले आएगा। एक और अटैची में नोटों की गड्डियां जमाई गईं, और उसे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने आए मास्टर जी के साथ कर दिया। मास्टर जी अटैची को अपने स्कूटर के पीछे बांधकर ले गए। एक और संदूकची में विदेशी मुद्रा और ट्रैवलर चेक थे। वह भैंस का दूध दुहने आए ग्वाले के हवाले कर दी

गई। शराब की बोतलों को खोलकर नालियों में बहा दिया गया। सेठ जी की समझ में यह नहीं आ रहा था कि हर कमरे में लगे एयरकंडीशनर का वह क्या करें। सेठानी पूजा के कमरे में बार-बार जा बैठती, सेठ जी को यह अच्छा भी लगता, बुरा भी। "भगवान क्या करेगा! ईश्वर तो इन मामलों में हमेशा दगा देता है।" बार-बार वह यह कहते और आगे-पीछे थूकने लगते। कोई इस तरह की बात हो जाती तो सेठ जी का बलगम उछल पड़ता था।

सारा दिन राय बहादुर के घर तलाशी होती रही। सारा दिन सेठ जी के घर एक-एक कीमती चीज को इधर-उधर किया जाता रहा। पुलिस का संतरी बीच-बीच में आता, खा-पीकर कोई न कोई हिदायत देकर खिसक जाता। हर बार आता और सेठ जी उसकी खातिर करते।

- और फिर यों लगता, जैसे बला टल गई हो। दोपहर ढल रही थी।

"जो अभी तक नहीं आए, अब क्या आएंगे!" सेठानी कहती।

"आएं तो आ सकते हैं। पुलिस और मौत का कोई वक्त नहीं होता।" सेठ जी अभी भी डरे हुए थे।

"आए तो बेशक आए। हमारी कोठी में अब क्या धरा है!" सेठानी लापरवाही से कहती।

"यों मत कह, दीवारों से संगमरमर तो तू हटाने से रही। और तेरी रसोई में जो कुकिंग रेंज है, उसका हिसाब किसे देगी!" सेठ जी ने उसे खबरदार किया।

और सहमकर सेठानी फिर पूजा वाले कमरे में जा घुसी। और उसने जोर-जोर से पाठ करना शुरू कर दिया। डरी-सहमी हुई, मन कहीं का कहीं, वह पन्नों के पन्ने उलटती जा रही थी।

और इस तरह सांझ हो गई। पुलिस अपनी जीपों में बैठकर चली गई। चलने से पहले वही संतरी उनके यहां आया और कह गया, 'मैंने सब कुछ ठीक कर दिया है। आप चिंता न करें।" और सेठानी ने शुक्राने के तौर पर एक सौ रुपये का नोट और उसकी हथेली में थमा दिया।

"यह काहे को?" संतरी कहने लगा, "आगे आपने थोड़ा किया है!"

"रास्ते में चाय-पानी के लिए।" सेठानी ने हल्का-सा मुंह बिचकाकर

कहा।

और सतरी चल दिया।

पुलिस को गए ज्यादा देर नही हुई थी कि राय बहादुर छड़ी पकड़े सेठ जी के यहां आए। पीला जर्द मुह, बिखरे हुए बाल, थर-थर काप रहे हाथ। उन्होंने सोचा, पड़ोसी के यहां बैठकर एक पेग स्काच का पीएंगे। लेकिन सेठ जी ने तो रखी-रखाई सारी शराब नालियों में बहा दी थी।

"लेकिन आपने यह क्या किया?" राय बहादुर कहने लगे।

"अगर आपके बाद हमारे यहां आ जाते तो क्या होता!" सेठानी ने कहा।

"यों भी कभी हो सकता है! बगैर तलाशी के वारंटों के पुलिस किसी के घर घुस नही सकती।"

"क्या मतलब?" सेठ साहब की ऊपर की सास ऊपर और नीचे की नीचे रह गई।

"हां, हमारे यहा आए, पहले उन्होंने तलाशी के वारंट मुझे दिखाए फिर वह कोठी के अंदर घुसे। जाने से पहले सारी पूजी का ब्योरा बनाकर मुझसे कागज पर तसदीक करवा ली।"

"हाय किस्मत! हमने तो हजारो संतरी को लुटा दिए!" सेठानी हाथ मलने लगी।

"कौन-सा संतरी?" रायबहादुर ने पूछा।

"आपके घर से आया था। दिन में कई चक्कर वह लगाता रहा।" सेठ जी ने बताया।

"तो फिर आपको वह उल्लू बनाता रहा है। कितनी रकम आपने उसे दी थी?"

"पंद्रह हजार···।" और सेठ जी की जबान हकलाने लगी।

"आपको अभी पुलिस में रिपोर्ट करनी चाहिए।" राय बहादुर ने कहा, "लेकिन रिपोर्ट भी क्या करोगे!" अगले क्षण आप ही आप राय बहादुर कहने लगे। और फिर छडी पकड़े वह उठकर चल दिए।

सेठ जी और सेठानी के काटो तो खून नही। कितनी देर बिट-बिट एक-दूसरे के मुंह की ओर देखते रहे।

"अच्छा, वह तो जो हुआ सो हुआ। अब मेरे गहने और बाकी माल तो वापस मंगवाओ।" सेठानी में जब कुछ शक्ति लौटी तो वह बोली।

"एक-दो रोज और देख लेते है।" सेठ जी की राय थी।

"आप मेरे गहने तो मगवा दीजिए, बाकी माल जब चाहे मंगवाते रहना।" सेठनी को गहनों से सारी उम्र बड़ा लगाव रहा था।

और सेठ जी सेठानी की जिद पर मोटर में बैठकर ड्राइवर के घर चल दिए।

ड्राइवर तो घर नही पहुंचा था। उसकी पत्नी कहने लगी, "वह तो सुबह से कोठी ड्यूटी पर गए हुए है।" साधारण-सी औरत अपने गोदी के बच्चे को खटिया पर बैठी खिला रही थी।

सेठ जी ने सुना और उनके सोते सूख गए। किशनचंद घर क्यों नही पहुंचा था ? वह तो कभी का कोठी से चला हुआ था।

मोटर में बैठी सेठानी को तो जैसे गश आ गया हो। सेठ जी मोटर लेकर मास्टर जी के घर गए, जिसे उन्होंने नोटों से भरी हुई अटैची थमाई थी। मास्टर जी के क्वार्टर को ताला लगा हुआ था। पड़ोसी ने बताया, "वह तो बेचारा सुबह का निकला हुआ रात को लौटता है।" सारा दिन एक कोठी से दूसरी कोठी में बच्चे पढ़ाता रहता है। अब उसे कैसे ढूंढा जाए ! सेठ जी माथा पीटकर रह गए।

वहा से सेठ जी ग्वाल मंडी गये जहा उनका ग्वाला रहता था। ग्वालिन ने सेठ जी की मोटर देखी और रोने-पीटने लगी। वह तो कब से अपने घर वाले की बाट देख रही थी। कोठी में भैंस दूहने गया था, अब तक नही लौटा। जरूर कोई हादसा हो गया होगा। सुबह जब उसने साइकिल पर पांव रखा तो उसे छींक आई थी। कहने लगा, "वहम न किया करो, तुम बहुत वहमी हो !" ग्वालिन की बात सुनकर सेठ जी ने उससे और कोई सवाल नही किया।

और मोटर लेकर वह सीधे थाने पहुंचे। वह तो लुट-पिट गए थे। बरबाद हो गए थे। जो हाल उनका हुआ था, ईश्वर दुश्मन का भी न करे। गजब खुदा का, एक पल के पल में वह मिट्टी मे मिल गये थे।

थाने पहुंचे तो सेठ जी ने देखा, ड्राइवर भी और मास्टर जी भी,

ग्रौर ग्वाला भी सामने सीखचों वाले कमरे के ग्रदर बैठे थे। सेठ जी की मोटर देखकर उनकी जान में जान ग्रायी।

ग्रौर पुलिस के ग्रफसर ने सेठ जी को देखते ही ग्रपने ग्रहलकार से कहा, "सेठ जी तो खुद ही ग्रा गए हैं, इन्हें गिरफ्तार करने के लिए भेजी पार्टी को वापस बुला लो।" हवालात में सेठ जी को बताया गया, जैसे-जैसे कोई माल लेकर उनकी कोठी से बाहर निकलता था, ग्रगले मोड़ पर तैनात पुलिस की टुकड़ी उसे धर पकड़ती थी ग्रौर उसका माल जब्त कर लेती थी।

"माल बरामद करने का यह भी एक तरीका है।" पुलिस ग्रफसर ने हंसते हुए सेठ जी को बताया। उसके पास वह संतरी खड़ा था जिसके कहने पर वह ग्रपनी सारी पूजी यों इधर-उधर करते रहे। रिश्वत के तौर पर ली गई रकम सामने मेज पर पड़ी थी।

श्लील और अश्लील

"पर···" और वह रुक गया। वह कुछ कहना चाह रहा था। फिर सहसा उसे ध्यान आया, मेहमाननवाजी मेजबान पर ही छोड़ देनी चाहिए।

वह भुवनेश्वर में किसी सम्मेलन के लिए आमंत्रित किया गया था। सम्मेलन के बाद उसके मित्र उसे कोणार्क के प्रसिद्ध मंदिर की यात्रा के लिए ले जा रहे थे।

उसके मेजबान की कार जब कोणार्क की सड़क की ओर मुड़ी, उसने सोचा कि वह कहे कि पहले पुरी में जगन्नाथ जी के विशाल मंदिर के दर्शन किए जाएं। लेकिन वह रुक गया। मंदिर बड़ा क्या और छोटा क्या?

फिर भी उसे यह बात ठीक नहीं लग रही थी। एक ही सड़क पर दोनों मंदिर थे। एक ही शाम इन्हें दोनों के दर्शन करने थे। उसके भीतर का श्रद्धालु चाहता था कि पहले पुरी के सुविख्यात मंदिर में शीश नवाया जाए।

लेकिन कार तो कितनी आगे निकल आई थी! और फिर वे कोणार्क पहुच गए। मंदिर के पास उनकी गाड़ी अभी रुकी ही थी कि एक गाइड ने आगे बढ़कर उनपर अपना कब्जा जमा लिया।

"यह स्थान ईसा से 1900 वर्ष पूर्व का है। इसका जिक्र सम्भा-पुराण मे आता है। सम्भा श्रीकृष्ण का एक अति सुन्दर पुत्र था। एक दिन श्रीकृष्ण अपने महल के बाहर सम्भा को बिठाकर, अपनी स्त्री के साथ काम-क्रीड़ा कर रहे थे। सम्भा को यह आदेश था कि कोई अन्दर न आने पाए। कैसा संयोग कि उधर से नारद आ निकले। वे श्रीकृष्ण से मिलना चाहते थे। लेकिन महल में जाना तो वर्जित था। नारद को कौन

रोक सकता था ! जो कोई रोकता तो उनके शाप का भागीदार होता। सम्भा को समझ में कुछ नहीं आ रहा था। अभी वह कुछ कह भी नहीं पाया था कि नारद मुनि महल के भीतर चले गए। श्रीकृष्ण यह देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने अपने बेटे सम्भा को आदेश न पालने के लिए शाप दिया, 'तू कोढ़ी हो जाए।' सम्भा एकदम कोढ़ी हो गया। श्रीकृष्ण के शाप को भला कौन टाल सकता था ! नारद मुनि भी नहीं। लेकिन नारद जी ने एक युक्ति सुझाई। कोढ़ से मुक्ति पाने के लिए सम्भा को अर्क-क्षेत्र में मैत्रेयी नामक वनस्थली में चन्द्रभागा नदी के तट पर तपस्या करनी होगी। सम्भा ने ऐसा ही किया। एक बार जब वह नदी में स्नान कर रहा था, तो उसे सूर्यदेव के दर्शन हुए। उस स्थान पर मंदिर की स्थापना की गई। वही जगह आज कोणार्क नाम से जानी जाती है।

"आजकल जो मंदिर आप देख रहे हैं, यह देवगंगा वंश के अनंग भीमदेव के बेटे राजा लंगुला नरसिंह ने 1298 ईस्वी में बनवाया था। बारह सौ कारीगर सोलह वर्ष तक इस मंदिर को बनाते रहे। कई सौ करोड़ रुपया इसपर लगाया गया। कहा जाता है कि मंदिर का कलश, कारीगरों से स्थापित नहीं हो पा रहा था, यह देखकर स्थापत्यकला के सबसे बड़े माहिर बिसु महारणा के बारह वर्ष के बेटे ने कलश को अपने स्थान पर टिका दिया। लेकिन अपने पिता और दूसरे कारीगरों को बद-नामी से बचाने के लिए लड़के ने मंदिर की चोटी से कूदकर प्राण दे दिए।

"यह मंदिर सूर्यदेवता के रथ की शक्ल में बनाया गया है। इसके चौबीस पहिये हैं। बारह पहिये एक ओर, बारह पहिये दूसरी ओर। इसे खींचने के लिए सामने सात घोड़े बने हैं। चौबीस पहिये, चौबीस पक्षों के प्रतीक हैं। और सात घोड़े सप्ताह के सात दिन। क्योंकि सूर्यदेव समान रूप से सबके हैं, इसलिए इस मंदिर में भांति-भांति के जीवों की मूर्तियों को विविध रूपों में दर्शाया गया है।"

और जैसे-जैसे वह मूर्तियों को निहारता, उसके पांव तले से जैसे जमीन खिसकती जा रही हो। यह कैसा मंदिर था ! ये कैसी मूर्तियां थीं। कदम-कदम पर पुरुष स्त्रियों से सम्भोग कर रहे हैं—नौजवान, बूढ़े,

अपनी स्त्रियों के साथ, पराई स्त्रियों के साथ।

"इस मूर्ति में दर्शाया गया है कि अधिक भोग करने से सुजाक हो जाता है। मर्द के लिंग की शक्ल बिगडी हुई है।" उनके पीछे खड़ा हुआ गाइड बता रहा था।

"और इसमे मर्द मर्द के साथ···

"इसमें औरत औरत के साथ···।

"इसमें एक औरत एक से अधिक मर्दों के साथ ··

"इसमें खड़े हुए···इसमें बैठे हुए···इसमें लेटे हुए···इसमें एक बूढ़ा एक कोमल कुवारी के साथ···इसमें एक स्त्री···लिंग को चूमते हुए··· इसमे एक मर्द भग को···"

नगे मर्द···नंगी औरतें···अनढके अंग···कोई परदा नही···कोई शर्म नहीं। काम-क्रीड़ा के अजीब-अजीब दृश्य।

उसने कोणार्क के बारे में सुन रखा था, पढ रखा था। लेकिन उसे इसका अनुमान कदापि नहीं था कि आज से कई सौ वर्ष पहले इस तरह की मूर्तिया मूर्तिकार बनाते थे। इस तरह के चित्र चितेरे चित्रित करते थे···और फिर मंदिरों में?

यह मंदिर कभी नही हो सकता, उसका मन बार-बार कहता। समुद्र के किनारे अय्याशी का अड्डा होगा। जहा समुद्री यात्री आकर भोग-विलास करते होगे। बेशक यहा भगवान की मूर्तिया हैं। इस तरह के लोगों को भगवान की भी तो जरूरत होती है। पूजा भी तो वे लोग करते हैं। एक ही जगह दोनों सहूलियतें मुहैया की गई थी।

कोणार्क की पहली मंजिल, दूसरी मंजिल, तीसरी मंजिल···उसके मुह का स्वाद फीका-फीका हो रहा था। उसे अपना आप मैला-मैला लग रहा था। एक कोने में खड़े होकर उसने ऊपर नजर दौड़ाई। धुर चोटी पर एक आदमकद मर्द का नंग-धड़ंग बुत एक नग-धड़ंग औरत से चिपटा हुआ था। जैसे किसी चंचल फोटोग्राफर ने की-होल में से किसी मर्द-औरत के सोने के कमरे की तसवीर उतार ली हो।

उसे काम-क्रीड़ा के दृश्यों को दर्शाने पर इतनी आपत्ति नही थी, जितनी उन्हें इस प्रकार स्पष्ट करके उभारने मे। नंगेपन को जैसे और

भी नंगा किया गया हो। इससे भी अधिक नंगा, जितना नंगापन ग्राम जिंदगी में होता है। कलाकार किसी बात को न कहकर भी कह जाया करता है। किसी बात को न दर्शाकर भी दर्शा देता है। कोणार्क की मूर्तियों में इस तरह की कोई बात नहीं। मर्द औरतों पर चढ़े हुए, औरतें मर्दों पर सवार। औरत के कोमल से कोमल अंग, मर्दों के पोशीदा से पोशीदा हिस्से—इस प्रकार प्रदर्शित किए हुए मानो मूली-गाजरें हों।

"और फिर मंदिर गिर गया," गाइड बता रहा था, "पता नहीं भूचाल के कारण, पता नहीं बिजली गिरने से, पता नहीं इसके निर्माण में कोई कमी रह गई थी।"

'गिरना तो इसे था ही,' उसका मन कह रहा था। 'जिस स्थान पर इस तरह के व्यभिचार को दर्शाया जाए, उस जगह पर कभी न कभी भगवान का कहर टूटता है।'

गाइड आपसे-आप बोल रहा था।

"शुरू में यह मंदिर 228 फुट ऊंचा था। इसकी मुख्य शाला 150 फुट ऊंची थी। अब इसकी ऊंचाई 130 फुट रह गई है।

"कोणार्क के कारीगरों ने सूर्यदेवता का मंदिर, मुख्य शाला, नाट्य-मंदिर और पूर्वी द्वार इस ढंग से बनाए कि हर रोज सुबह सूरज की पहली किरण तीन द्वारों से गुजरकर सूरज देवता की मूर्ति पर गिरती है।

"ये मूर्तियां मूर्तिकला की दुनिया मे अत्यन्त सुन्दर कलाकृतियों में से हैं। कहीं-कहीं इतना बारीक, इतना महीन काम हुआ है, कारीगरों ने जैसे सुई की नोक से उन्हें बनाया हो।

"कामसूत्र की मूर्तियां यात्री के लिए व्यभिचार के प्रति उपेक्षा उत्पन्न करती हैं···"

'नहीं, नहीं, नहीं' उसका जी चाहता था कि वह लपककर गाइड का मुंह बन्द कर दे। उसका अंग-अंग उत्तेजित हो रहा था।

"इस मंदिर में नाच के दृश्य, गाना गा रही मंडलियां, साज बजाते हुए साजिन्दे, भांति-भांति के पशु-पक्षी···यह देखो, जिराफ अंगूर खा रहा है···।

"इस मंदिर में भक्त ध्यान मे मग्न बैठे दर्शाए हैं···राजाओं के

महलों के दृश्य है...हाथी हैं, ऊंट हैं...सांप है...क्या नहीं है इसमें।"

"फिर जब यह मंदिर गिरा, शायद समुद्री तूफान ने यह कहर ढाया हो, तो इसकी सर्वोत्तम मूर्ति को सन् 1628 में नरसिंह देव नामक राजा ने पुरी के जगन्नाथ जी के मंदिर में ले जाकर स्थापित कर दिया।"

और वह गाइड के मुंह की ओर देखने लगा। "आखिर भगवान भी इस मंदिर में से भागकर, जगन्नाथ जी के मंदिर मे जा टिके।" उसने हंसते हुए गाइड से कहा।

"और कोई समय था, यह मंदिर घने जंगल से घिर गया था। इसके आगे-पीछे खूंख्वार जंगली जानवर और डाकू घूमा करते थे। आस-पास के गांव के लोग इधर मुंह नहीं देते थे।"

यह सुनकर जैसे उसे ठंडक महसूस हुई है। जैसे अश्लीलता के लिए किसीको दंड भुगतना पड़ रहा हो, उसे ऐसा प्रतीत हुआ।

कोई समय था, जब इस मंदिर में डाकू आकर छिपते थे। इसकी महराबों के नीचे सांप अंडे देते थे। इसके आंगन में शेर और चीते अपना घर बनाकर रहते थे। इस तरह के विचार उसके मन में घूम रहे थे, जब कार में बैठे हुए वे जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए पुरी की ओर बढ रहे थे।

हल्का-हल्का अंधेरा हो रहा था, जब वे पुरी पहुंचे। "तीर्थ-यात्रा के लिए पुरी से अधिक सुन्दर कोई और स्थान नहीं। सचमुच यह धरती का स्वर्ग है।" उसे ब्रह्मानन्द पुराण का यह कथन याद आ रहा था।

जब उनकी कार जगन्नाथ जी के मंदिर के सामने रुकी, उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। अभी वे कार से निकले ही थे कि उन्हें यहां भी एक पंडे ने दबोच लिया।

"इतिहास में पश्चिमी नाविक इसे सफेद पगोडा कहा करते थे। कोणार्क के मंदिर का नाम उन्होंने काला पगोडा रखा हुआ था।" पंडे का यह कथन सुनकर उसकी हंसी छूट गई।

"यह मंदिर नीलगिरि पर स्थापित किया गया है।" पंडा अब उन्हें पूर्वी द्वार की ओर ले जा रहा था। "इस द्वार को सिंहद्वार भी कहते हैं। इसमें से निकल, बीस सीढ़ियां चढ़कर मंदिर में प्रवेश किया जाता है।"

और फिर पंडा उन्हें मंदिर की स्थापना की कथा सुनाने लगा। वे लोग यात्रियों की भीड़ में मंदिर की विशाल सीढ़ियां चढ रहे थे।

"कहते है, मालवा के एक राजा इन्द्रदमन ने भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या की, एक हजार अश्वमेध यज्ञ रचाये। फिर भगवान एक शहतीर के रूप मे सागर पर तैरते हुए प्रकट हुए। राजा ने कई कारीगर बुलाए ताकि शहतीर में से भगवान की मूर्ति तराशी जाए। लेकिन जब वे लोग अपनी छेनी को शहतीर से छूते, उनकी छैनियां कुठित हो जाती। आखिर स्वयं भगवान विष्णु एक बूढ़े कारीगर के रूप में धरती पर आए और उन्होने 21 दिनों मे लकड़ी के शहतीर में से मूर्ति तैयार करने का दायित्व संभाला। लेकिन इन्द्रदमन से इतने दिन तक रुका न गया। और पन्द्रह दिन के बाद ही कपाट खोलकर उसने यह देखना चाहा कि मूर्ति कितनी बन चुकी है। उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि जगन्नाथ और उनके भाई बलभद्र तथा उनकी बहन सुभद्रा की मूर्तिया आधी-अधूरी ही बनी थीं, और उनका बनाने वाला कहीं भी नही था। तीनों मूर्तिया कमर से ऊपरी भाग को दर्शा रही थीं। जगन्नाथ जी और उनके भाई बलभद्र के हाथ तक नही पूरे किए गए थे। उनकी बहन सुभद्रा के तो हाथ बनाये ही नही गए थे। इन्द्रदमन ने जगन्नाथ जी के लिए मदिर बनवाया और स्वयं ब्रह्मा जी को निमंत्रित करने के लिए गया ताकि वे अपने करकमलों से मूर्तियों की स्थापना करें। इसके बाद मंदिर गिरता रहा'''बार-बार बनता रहा'''"

पंडा अब उन्हे भोग-मंडप दिखा रहा था। पुरी के विशाल मंदिर के चार भाग हैं। जगन्नाथ जी को जो भोग लगाया जाता है, उसे महाप्रसाद कहते हैं। इस मंदिर मे हर रोज दस हजार यात्रियों के लिए प्रसाद तैयार किया जाता है। हर कोई एक स्थान पर बैठकर प्रसाद ग्रहण करता है। चाहे कोई ऊंची जाति का हो चाहे नीची जाति का; चाहे कोई राजा हो, चाहे रंक। जगन्नाथ जी को दिन में पाच बार 85 प्रकार के प्रसाद का भोग लगाया जाता है। इसके बाद जगमोहन मडप, जिसे नाट्य मंडप भी कहते हैं। इसके बाद मुखशाला। एक मे से एक मंडप निकलता चला जाता है।

और अब वे 'बड़ादेवल' या मुख्यमंडप में थे। 210 फुट ऊंचा। "उड़ीसा-भर में इससे ऊंचा मंदिर कोई नहीं।" पंडा धीरे से उनके कानों में कह रहा था, श्रद्धालुओं की अपार भीड़ थी। हाथ-जोड़े खड़े हुए, बैठकर माथा रगड़ रहे, लेटकर दंडवत् कर रहे, मंत्र पढ रहे, जाप कर रहे, मन्नतें मानते हुए, प्रायश्चित्त करते हुए। दूर सामने जगन्नाथ जी, बलभद्र और सुभद्रा रत्न-सिंहासन पर विराजमान और उसके सामने पुजारी आरती उतार रहे। "आप लोग बड़े भाग्यशाली है जो इस आरती के समय भगवान के दर्शन कर रहे हैं।" पंडा उनके कानों में कह रहा था। आरती के थालों में कर्पूर के दीये जल रहे थे। भांति-भांति की सुगंधियां थी। फूल थे, और ढेर सारी अन्य सामग्री। पुजारी, श्लोकों का गायन करते हुए, आरती के थालों को दोनों हाथों में लिए मूर्तियों के सामने घुमा रहे थे। यह देखकर अपार जन-समूह 'जगन्नाथ जी की जय', 'जगन्नाथ जी की जय' पुकारने लगा। एक बार, दो बार, तीन बार। ऊंची और ऊंची। सब आंखें मुंदी हुई थीं। सबका ध्यान जगन्नाथ जी के चरणों मे लोट रहा था। चारों ओर मंत्रोच्चार हो रहा था। चारों ओर यात्री हाथ जोड़े खड़े थे।

अचानक उसकी नजर घूमते हुए मंडप की विशाल छत पर पड़ी। रंग-बिरंगी चित्रित छत के एक ओर, किसी देवाकार स्तंभ के पार्श्व में उसने देखा, कबूतरों का एक जोड़ा कल्लोल कर रहा था। एक-दूसरे की गर्दन मे गर्दन, एक-दूसरे की चोंच मे चोंच, एक-दूसरे के परों मे पर। और फिर नर एक उन्माद में, एक नशे में, एक हिलोर में कूदकर मादा पर सवार हो गया। और फिर वे तड़पने लगे। नर भी, मादा भी। एक स्वाद में, एक नशे मे, एक मस्ती में।

आरती समाप्त हो चुकी थी। अब जयकार गूंज रही थी। और पुजारी श्रद्धालुओं को प्रसाद बांट रहे थे।

उनका पंडा पता नहीं, कैसे आगे बढ़कर उनके लिए आरती के थाल में से कर्पूर की पवित्र राख ले आया था। और श्रद्धा में विभोर यात्रियों के माथे पर उससे टीके लगा रहा था।

ooo